चीन

और

नेहरू

✤

राजकुमार

✤

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
वाराणसी

प्रकाशक
श्री ओम्प्रकाश बेरी
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
वाराणसी।

प्रथम संस्करण—अगस्त, १९५५
द्वितीय संस्करण—सितम्बर, १९५६
तृतीय संस्करण—मार्च, १९५७

मूल्य १।।।)

मुद्रक
विद्यामंदिर प्रेस (प्राइवेट) लिमिटेड, वाराणसी।
तथा
सन्मार्ग प्रेस, वाराणसी।

प्रकाशक की ओर से

'चीन और नेहरू' का प्रथम संस्करण अगस्त, १९५५ में प्रकाशित हुआ था। कुछ मासके अन्दर ही इस संस्करणकी सारी प्रतियाँ समाप्त हो गयीं और माँग बनी रही। इस पर ध्यान देते हुए दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ। हमें यह कहते हुए प्रसन्नता होती है कि इस संस्करणकी सारी प्रतियाँ भी हाथों-हाथ बिक गयीं।

एक वर्षके अन्दर पुस्तकके—वह भी राजनीतिक विषयकी पुस्तकके दो संस्करणोंकी समाप्ति के बाद 'चीन और नेहरू'की लोकप्रियता और उसकी उपादेयताके सम्बन्धमें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती; हमारे ग्राहकों और एजेण्टोंने जिस उत्सुकतासे इसे अपनाया, वह प्रशंसनीय है। इससे उत्साहित होकर हम तीसरा संस्करण प्रस्तुत कर रहे हैं।

यह बताकर हम प्रसन्नताका अनुभव करते हैं कि चीन आदिसे भी पुस्तककी माँग हमारे पास आयी है। इसके महत्व पर ध्यान देकर तीसरे संस्करणमें लेखक ने दो नये अध्याय भी जोड़ दिये हैं। इनसे पुस्तककी उपयोगिता बढ़ गयी है, यह निर्विवाद है।

इसके साथ-साथ हमें यह घोषित करते हुए हर्ष होता है कि 'चीन और नेहरू', 'अमेरिकामें नेहरू', 'नेहरूकी रूस-यात्रा' और 'राजनीतिक भारत' (१७५७ से १८५७) के लेखककी नयी पुस्तक 'स्वेज नहर' हम इसी मार्चमें अपने पाठकों, ग्राहकों और विक्रेताओंकी सेवामें उपस्थित कर रहे हैं। जिस प्रश्न पर तृतीय विश्व-युद्धकी विभीषिका मूर्त होती दिखाई देने लगी थी, उसपर लेखककी पुस्तक 'स्वेज नहर'का आदर भी अवश्य होगा, इस विश्वासके साथ इसे शीघ्रातिशीघ्र प्रकाशित करनेकी व्यवस्था की जा रही है।

—कृष्णचन्द्र बेरी

शुभ प्रतिफल का उदाहरण

नेहरू जी की चीन-यात्रा विश्वमें शांति बनाये रखनेमें कितनी सहायक हुई, यह आगामी आठ मासके अंदर स्पष्ट हो गया। जिस समय नेहरूजीने चीनकी यात्रा की थी, उस समय फारमोसा और उन ग्यारह अमेरिकनोंके प्रश्नको लेकर चीन और अमेरिकामें गहरी तनातनी उत्पन्न हो चुकी थी जो चीनकी दृष्टिमें जासूस और अमेरिकाके कथनानुसार कोरियाई युद्धसे सम्बन्धित सैनिक अधिकारी थे। जनवरी, १९५५ में इन दोनों प्रश्नोंने अत्यधिक गम्भीर रुख धारण कर लिया था। फारमोसामें बैठी च्यांग सरकार और लाल चीनकी माओ सरकार में सैनिक संघर्ष आरम्भ हो गया था। लाल चीनकी फौज मात्सु और क्यूमाय द्वीपसे च्यांगको खदेड़नेके लिए कृत संकल्प थी। उधर प्रशांतमें डटा अमेरिकाका सातवां समुद्री बेड़ा च्यांगकी सहायताके लिए सन्नद्ध था। अमेरिकाका मत था कि फारमोसा का मामला संयुक्त राष्ट्रसंघमें हल होना चाहिये। चीन सरकार का कहना था कि "चीन और अमेरिकाका पारस्परिक सम्बंध एक अन्तर्राष्ट्रीय सवाल है। चीनी लोक गणतंत्र और च्यांगकाई शेक गुटका आपसी सम्बंध, घरेलू मामला है।" इस प्रकार स्थिति उत्तरोत्तर खराब होती जा रही थी। चीनी लोक गणतंत्र किसी ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनमें भाग लेनेको तैयार न था जिसमें च्यांग पक्ष भी उपस्थित रहता। अमेरिकाको च्यांग पक्षके बिना किसी सम्मेलनमें भाग लेना स्वीकार नहीं था। इस प्रकार स्थिति बराबर बिगड़ती जाती थी। अमेरिकाके प्रवक्ता कड़े से कड़े शब्दोंका प्रयोग करते थे। अपने उत्तरमें चीन और भी कड़े शब्दोंका प्रयोग करता था। बात आणविक शस्त्रास्त्रोंके उपयोग तक बढ़ गयी थी। दुनिया सांस रोककर इन घटनाओंको देख रही थी। लगता था कि तृतीय महायुद्ध प्रशांतमें ही आरम्भ हो जायगा।

जनवरी, १९५५ में राष्ट्रमंडल प्रधान मंत्री सम्मेलनमें भाग लेनेके लिए पंडित जवाहर लाल नेहरू लंदन गये थे। इसी समय रूसकी ओरसे फारमोसाके प्रश्नपर

अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनके आयोजनका प्रस्ताव उपस्थित किया गया था। नेहरूजी इससे सहमत थे लेकिन अमेरिका असहमत था, अतः युद्धके बादल मंडराते ही रहे।

इस समय तक अमेरिकन बंदियोंका मामला भी काफी आगे बढ़ चुका था। संयुक्त राष्ट्रसंघने अपने नौवें अधिवेशनमें १० दिसम्बर, १९५४ को एक प्रस्ताव स्वीकार किया था। इसका शीर्षक था, "कोरियायी विराम संधिकी शर्तोंकी अवहेलना करके, संयुक्त राष्ट्रोंके सैनिक अधिकारियोंको नजरबंद करने तथा बंदी बनानेकी शिकायतपर विचार।" इस प्रस्ताव द्वारा राष्ट्रसंघकी साधारण सभाने अपने महामंत्रीसे यह अनुरोध भी किया था कि वह बंदी सैनिक अधिकारियोंकी रिहाईके लिए प्रयत्न करें।

यह काफी गम्भीर बात थी। इसका स्वरूप स्पष्ट करनेके लिए अमेरिकन बंदियोंसे सम्बंधित घटना का विवरण,जो चीन सरकारने प्रसारित किया था,प्रस्तुत करना अनुपयुक्त न होगा।

चीनी लोक गणतंत्र के भारत स्थित दूतावास द्वारा प्रकाशित ३ दिसम्बर, १९५४ की समाचार बुलेटिनमें बताया गया था कि "अमेरिकन जासूस जिनमें तेरह अमेरिकन नागरिक और नौ चीनी नागरिक शामिल हैं, चीनकी सुरक्षाको गम्भीर क्षति पहुँचानेके अपराधमें दण्डित किये गये हैं। इनपर जासूसीके दो मुकदमें चलाये गये थे।

"जासूसोंके एक दलका नेता था---अमेरिकाके ५८१ वें वायुकी सप्लाई और यातायात पक्षका कमांडिग अफसर (कर्नल) जान नाक्स आर्नल्ड जूनियर उसके मातहत था---अमेरिकाकी सुदूरपूर्व वायु सेनाके ९१वें 'स्ट्रैटेजिक' निरीक्षण दस्तेका कार्यवाही अधिकारी (मेजर) विलियम हर्ल बामर।

"जासूसीके दूसरे मुकदमेंमें जान थामस डानी और रिचार्ड जार्ज फैक्टयू (अमेरिकन) शामिल थे। ये दोनों अमेरिकाके एक गुप्तचर संघटनके सदस्य थे।

"डानी और फैक्टयू अमेरिकाकी केंद्रीय खुफिया एजेंसीके अन्तर्गत एक गुप्तचर संघटन, आत्सुकी (जापान) में काम करते थे। १९५२ के बसंतमें डानीने चीनी जाति के कुछ खास एजेंट छांटे और उन्हें 'रीमबेन' और 'टीन शेन' नामकी दो टोलियोंमें संघटित किया। बादमें ये टोलियां आकाश-मार्गसे चीनके किरिन और ल्याओनिंग प्रांतोंमें उतार दी गयीं। अक्तूबर, १९५२ में डानीने लिम्पुन-

इंग नामक एक और एजेंटको सम्पर्क और विध्वंसक कारवाइयोंके लिये आकाश-मार्गसे किरिन प्रांतमें उतारा। अगस्त, १९५२ में वह 'टीनवेन' के लिए भोजन और अन्य सामान गिरानेके लिए स्वयं भी एक अमरिकन विमान द्वारा गुप्त रूपसे किरिन प्रांतमें घुस आया।

"२९ नवम्बर, १९५२ को रात्रिमें डार्नी और फैक्टयू एक अमेरिकन विमान द्वारा उत्तर-पूर्वी चीनमें घुसे। आकाश-मार्गसे भेजे गये एजेंटोंसे उन्होंने सम्पर्क स्थापित किया और उन्हें सामान दिया तथा लिचुन-इगको, जिसे रिपोर्ट देनी थी, विमानमें चढ़ानेकी कोशिश की। दोनों उसी समय पकड़ लिये गये। उनका विमान गोली मारकर गिरा दिया गया।

"डानीने चीनी जातिके जिन नौ खास एजेंटोंको किरिन और ल्यानिंग प्रांतोंमें उतारा था, वे सबके सब च्यांगकाई शेक गुटके पुराने अधिकारी थे। हांककांगके एक अमेरिकी गुप्तचर संघटन—'स्वतंत्र चीन आंदोलन' ने १९५१ में उन्हें भर्ती किया था और जासूसी की ट्रेनिंग दी थी। बादमें उन्हें, सीधे डानीके अधीन, और ट्रेनिंग दी गयी। तब उन्हें हथियार और रेडियो-सेट देकर गुप्त रूपसे आकाश-मार्ग द्वारा उत्तर-पूर्वी चीनमें उतार दिया गया। उनका काम था—सशस्त्र एजेंटोंके अड्डे कायम करना, एजेंटकी रक्षाके लिए बचावके स्थान बनाना, आकाश की राह उतारे जानेवाले सामान और एजेंटोंके लिए स्थान (पैराशूटिंग स्थल) बनाना, चीनकी प्रतिरक्षा, औद्योगिक क्षेत्रों तथा ऋतु-विज्ञानसे सम्बंधित सूचनाएँ करना, गोली मारकर गिराये गये आक्रमणकारी अमेरिकन वायु सैनिकोंकी रक्षा करना और च्यांगकाई शेक पक्षके शेष बचे दस्युओंको एकत्र करना।

"कमांडिंग अफसर आर्नल्डके '५८१वें वायुकी सप्लाई और यातायात पक्षका' काम अमेरिकन केंद्रीय खुफिया एजेंसीके अधीन जासूसी करना था। इसका काम था—आकाश मार्गसे चीन और सोवियत संघमें खास जासूस उतारना, उन्हें सामान पहुँचाना और उनसे सम्पर्क रखना। यह जुलाई १९५१ में इडाहो (अमेरिका) के माउण्टेन होम हवाई अड्डे पर चालू किया गया था। एक वर्ष तक इसे मुख्य एजेंटोंको एकत्र करने, आकाश-मार्गसे सामान गिराने, दुबारा सामान पहुँचाने और एजेण्टोंसे सम्पर्क रखने के विशेष ट्रेनिंग दी गयी थी। इसके बाद जुलाई, १९५२में इसे चीन और सोवियत संघ के सुदूरपूर्वके समुद्री क्षेत्रोंके विरुद्ध

विद्वेषपूर्ण कारवाइयाँ करनेके लिए, फिलिपाइंसमें क्लार्क हवाई अड्डेपर भेज दिया गया था ।

"विलियम हर्ले बागरने अनेक बार चीनकी राष्ट्रीय प्रतिरक्षा व्यवस्थाओंका हवाई जहाजसे निरीक्षण किया था ।

"१२ जनवरी, १९५३को आर्नल्ड और बामरने ल्याओनिंग प्रांतमें चीनके प्रादेशिक आकाश-क्षेत्रका अतिक्रमण किया था । इनके विमानको गोली मारकर गिराया गया था । इसमें मोजूद तीन एजेंट मारे गये और शेष ग्यारह जो अमेरिकन थे, पकड़ लिये गये थे । "

चीनी लोक गणतंत्रके सर्वोच्च-न्यायालयके सैनिक अधिकरणके समक्ष इनपर मुकदमा चलाया गया जिसने २३ नवम्बर, १९५४को इन्हें या तो मृत्यु दण्ड या चार वर्ष आजीवन कारावास का दंड दिया ।"

इस विवरणसे स्पष्ट है कि चीन अमेरिकन बंदियोंके मामलेको किस दृष्टिसे देखता था । यहाँ इस विवादका कोई प्रयोजन नहीं है कि चीन ने जो अभियोग लगाये थे, वे अयथार्थ थे अथवा यथार्थ ।

यह एक नाजुक प्रश्न था । अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न होनेके बावजूद चीनकी दृष्टिके लिहाजसे यह उसका घरेलू मामला था । इसमें हस्तक्षेप करने अथवा इसपर अपना मत प्रकाशित करनेकी भी कोई गुंजाइश नेहरूजीके लिए नहीं थी । मित्रकी हैसियतसे उन्होंने इसपर विचार अवश्य किया । यह कहना बड़ा मुश्किल है कि उन्होंने चीनको क्या सलाह दी; क्योंकि जो कुछ भी हुआ, वह कूटनीतिक और राजनीतिक स्तर पर हुआ । फिर भी आगेकी घटनाओंके आधारपर यह कहा जा सकता है कि अमेरिका और चीनके बीच वर्तमान तनातनीको कम करनेकी दृष्टिसे नेहरूजीने इसमें खास हिस्सा लिया था और एक समझदार मित्रके रूपमें चीनने उनकी सलाहकी कद्र की थी । इसके फलस्वरूप मई, १९५५में चीनने चार अमेरिकन हवाबाजोंको रिहा कर दिया था ।

यों, यह मामला काफी जटिल था । चीनके परराष्ट्र मंत्री श्री चाओ एन लाईके उस उत्तरसे यह स्पष्ट है जो उन्होंने राष्ट्रसंघके महामंत्री श्री हैमरशुल्डको दिया था ।

राष्ट्रसंघकी साधारण सभाके १० दिसम्बर, १९५४के प्रस्तावके अनुसार उसके महामंत्री श्री हैमरशुल्डने चीनके परराष्ट्रमंत्रीको एक तार भेजा था, जिसमें चीन

आकर अमेरिकन बंदियोंके मामले में वार्ता करनेकी इच्छा प्रकट की गयी थी। इसके उत्तरमें १७ दिसम्बरको श्री चाओ एन लाईने राष्ट्रसंघके महामंत्रीको जो तार भेजा था, उसकी भाषा और भाव काफी कड़े थे। उन्होंने लिखा था—"अमेरिकाकी सरकार की चीख-पुकारका उद्देश्य चीनके विरुद्ध शत्रुता और द्वेषको भड़काना और इसप्रकार उस आक्रमणपर पर्दा डालना है जो अमेरिका-फारमोसा पारस्परिक सुरक्षा संधि करके तथा (फारमोसा) और पेंग-चु द्वीपोंपर कब्जा करके किया गया है। इसका उद्देश्य चीनके इस दोषारोप पर पानी फेरना है कि अमेरिका ने चीनी इलाके पर सशस्त्र आक्रमण किया। अमेरिकाकी ये कारर्वाइयाँ, पूर्व और पश्चिमके बीच तनाव उत्पन्न करने तथा एक नये युद्धकी तैयारी करनेके उसके प्रयत्नका अभिन्न अंग है। चीनी जनता युद्धके विरुद्ध है, लेकिन युद्धकी धमकियाँ उसे डरा और झुका न सकेंगी। चीनी जनता शांतिकी इच्छा रखती है लेकिन वह भूमि और प्रभुसत्ताका बलिदान करके शांतिकी भीख न मांगेगी। चीनने अमेरिकन जासूसोंको दण्ड देकर अपने प्रभुसत्ताजन्य अधिकारका उपयोग किया है। अमेरिकाकी कोईभी चीख-पुकार उसके न्यायोचित कदमको डिगा न सकेगी।"

यह उत्तर चीनके रुखको स्पष्ट करने वाला था। सारी दुनियामें इसकी यही प्रतिक्रिया हुई कि राष्ट्रसंघके महामंत्री श्री हैमरशुल्डकी चीन-यात्रासे कोई लाभ न होगा। वास्तविकता भी यही थी। फिर भी समस्याको सुलझानेका प्रयास जारी रखा गया। श्री हैमरशुल्डने अपने प्रयासमें सहयोग प्रदान करनेकी अपील नेहरूजीसे की। इस एक बातसे ही स्पष्ट हो जाता है कि अन्तर्राष्ट्रीय जगतमें चीन-भारतकी सद्भावना पूर्ण मित्रताका कैसा असर था। कहनेको यह कहा जा सकता है कि अन्तर्राष्ट्रीय गुटबन्दीसे निर्लिप्त देशमें भारतही ऐसा देश था और है जिससे चीनका अच्छा सम्बंध था, अतः चीनसे बातके सिलसिलेमें भारतके प्रधान मंत्रीसे सहयोग प्रदान करनेकी राष्ट्रसंघके महामंत्रीकी अपील कोई विशिष्ट बात न थी। तर्ककी दृष्टिसे यह धारणा ठीक हो सकती है लेकिन बादकी घटनाओंने यह सिद्ध कर दिया कि भारतही इस मामलेमें उचित रूपसे मध्यस्थता कर सकता था और इसका कारण चीनसे उसका वह मैत्री और सद्भावनापूर्ण सम्बंध था जिसकी रचना नेहरूजीकी नीति और भारतसे मैत्री सम्बंध बनाये रखनेकी चीनकी इच्छाके फलस्वरूप सम्भव हो सकी थी।

जनवरी, १९५५में राष्ट्रसंघके महामंत्री श्री हैमरशुल्ड न्यूयार्कसे भारत पहुँचे और यहाँ नेहरूजीसे परामर्श करनेके बाद आप चीन चले गये।

चीनके प्रधान मंत्रीसे राष्ट्रसंघकी वार्ताका परिणाम अभी अप्रकाशित ऐतिहासिक कागज-पत्रोंमें ही है। दुनियाने यही देखा कि श्री हैमरशुल्ड वापस चले गये। फिर अप्रैल, १९५५में बांदुंगमें होनेवाले एशियाई-अफ्रीकी देशोंके ऐतिहासिक सम्मेलन तक इसकी चर्चा भी नाम मात्रको सुनाई दी।

बांदुंग सम्मेलनके दौरानमें घटनाओंने पुनः अकस्मात् पलटा खाया। इस समय चीनके प्रधान मंत्री श्री चाओ एन लाईके साथ भारतके प्रधान मंत्री नेहरूजी तथा श्री वी० के० कृष्ण मेननकी वार्ता कई बार हुई। वार्ता क्या हुई, यह अज्ञात रहा लेकिन यह चर्चा अवश्य हुई कि इसका परिणाम शुभ होगा ही। पश्चिमी देशोंकी राजधानियोंमें तरह-तरहकी अटकलबाजी की गयी। सारी दुनिया उत्सुकतापूर्वक इसके परिणामकी ओर जब आँखें लगाये हुई थी, तभी चीनके प्रधान मंत्री ने यह घोषणा की थी कि "अमेरिकाके साथ आपसी मसलोंपर बात करनेके लिए चीन तैयार है।" वस्तुतः यह कोई नयी बात न थी लेकिन इसकी भाषा और भाव नवीनतासे अछूते न थे। इस परिवर्तनको नेहरूजी के प्रयासका ही परिणाम बताया गया।

यह तो हुआ लेकिन उस नाटकीय घटनाका आभास तक दुनियाको नहीं मिली जो डेढ़ मास बाद अर्थात् ३१ मईको सामने आई।

बांदुंगमें ही चीनके प्रधान मंत्री श्री चाओने भारतीय प्रतिनिधि श्री कृष्ण मेननको चीन आनेका निमंत्रण दिया था। मईके अंतिम सप्ताहमें श्री कृष्ण मेनन ने चीनकी यात्राकी और वहाँसे लौटनेके बाद ३१ मईको नयी दिल्लीमें समाचार-पत्र प्रतिनिधियोंकी कांफ्रेंसमें उन्होंने यह घोषित करके दुनियाको आश्चर्यमें डाल दिया कि "चीनमें बंदी ग्यारह अमेरिकन हवाबाजोंमेंसे चारको छोड़नेका निर्णय चीन सरकारने कर लिया है और कुछ ही घण्टोंमें वह इसकी घोषणा कर देगी।" इस समाचारकी स्याही सूख भी न पायी थी कि चीनके प्रधान मंत्री द्वारा राष्ट्र-संघके महामंत्रीको यह सूचित किये जानेका समाचार भी दुनियाको मिल गया कि "रिहा किये जाने वाले चार अमेरिकन हवाबाज आज (३१मई) हांककांग पहुंच जायेंगे।'

इस प्रकार चीन-भारत मैत्रीके फलस्वरूप वह समस्या सरलतासे हल हो गयी जिसे आणविक शस्त्रास्त्रोंके प्रयोगकी अमेरिका की धमकी भी हल न कर सकी थी। दुनियाने इस घटनासे पारस्परिक सद्भावनाका मूल्य समझा। अमेरिकाके परराष्ट्रमंत्री श्री डलेसने इसके लिए स्वयं नेहरूजीका धन्यवाद किया था और इस सम्बंधमें भारतकी कोशिशकी सराहना की थी।

चीनके सम्बंधमें नेहरूजीकी नीतिकी यथार्थता और विश्व शांतिकी दृष्टिसे उसकी उपादेयता सिद्ध करनेवाले इस प्रबल प्रमाणके अंतरमें चीन-भारत मैत्री की एतिहासिक परम्पराओंको सजीव और सशक्त करनेकी नेहरूजीकी उत्कट इच्छा नहीं छिपी है, यह कहनेका साहस कौन कर सकता है ?

—×—

चीन ?

चीन और भारतके पारस्परिक सम्बन्ध, दूसरे देशोंको प्रभावित कर सकनेकी दोनों देशोंकी क्षमता, दोनोंकी भौगोलिक स्थिति एवं राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रोंमें दोनोंकी गतिविधिके सामान्य ज्ञानके बिना चीनके प्रति भारतके प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू के दृष्टिकोण तथा उसके महत्वको समझ सकना कठिन है। अन्तर्राष्ट्रीय जगतकी राजनीतिने आज ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है कि कोई भी राष्ट्र उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। ऐसी दशामे दो महादेशोंका जिनकी आबादी विश्वकी पूरी आबादीकी एक-तिहाई हो, एक-दूसरेके निकट आना विश्व-राजनीतिकी गतिको मोड़ सकने-वाला स्वयंसिद्ध एक तथ्य बन जाता है। इस तथ्यकी सर्जनामें प्रथमतः यदि ऐसे व्यक्तिका हाथ हो जो अपने देशके लिए विश्वके दो सर्वाधिक सबल परस्पर-विरोधी गुटोंका विश्वास अर्जित करनेमें समान रूपसे सफल हुआ हो तो गुट-विशेषके महान् देशमें उसका गमन राजनीतिक दृष्टिसे इतिहासके महत्वपूर्ण परिच्छेदकी रचना करेगा ही, यह निर्विवाद है। पंडित जवाहरलाल नेहरूकी चीन-यात्राने इतिहासके ऐसे ही परिच्छेदकी रचना की।

आजका सर्वतंत्र स्वतंत्र गणराज्य चीन महती क्रांतिका परिणाम है। यह क्रांति उस विचारधाराका परिणाम है जिसने सबल आर्थिक और राजनीतिक शक्तिका रूप धारण कर रखा है। पंद्रहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें जन्म लेकर बीसवीं शतीके प्रारम्भ तक निर्बाध रूपमें फलने-फूलने वाली सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थाकी राजनीतिक दुरभिसंधिके लिए यह विचारधारा चुनौती सिद्ध हो चुकी है। फलतः विश्वका अधिकतर भाग दो सबल गुटोंमें विभक्त हो गया है। दोनों गुट अपने-अपने अस्तित्वकी रक्षाके लिए सन्नद्ध हैं।

एक गुटका नेता अमेरिका है और दूसरे गुटका नेतृत्व रूस कर रहा है। वर्तमान चीन, रूसका साथी है। सामरिक शक्ति-संतुलन और सुदूरपूर्वमें अपने

और अपने मित्रराष्ट्रोंके आर्थिक स्वार्थोंकी रक्षा की दृष्टिसे चीनका रूसके गुटमें शामिल होना अमेरिकाके अनुकूल नहीं है। यही कारण है कि द्वितीय महायुद्धकी समाप्तिके बाद अगले तीन वर्ष तक अमेरिका मार्शल च्यांग काई शेककी सरकार की सहायता करता रहा। उसने मार्शल च्यांग काई शेकको अरबों रुपयेके शस्त्रास्त्र दिये और इस बातकी जी तोड़ कोशिश की कि चीनी गणराज्यके वर्तमान अध्यक्ष श्री माओत्से तुङ्गकी कम्युनिस्ट पार्टी चीन पर अपना आधिपत्य न जमा सके। चीनकी कम्युनिस्ट पार्टी और अमेरिकाके बीच यहीसे गहरा खिंचाव पैदा हुआ।

दिसम्बर, सन् १९४५ में मास्कोमें होनेवाले तीन बड़े राष्ट्रों (अमेरिका, ब्रिटेन और रूस) के परराष्ट्र मंत्री सम्मेलनमें अमेरिका चीनके आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने पर सहमत हो गया था। जापानके आत्म-समर्पणके बाद उसका इरादा बदल गया। उसने खुले आम मार्शल च्यांग काई शेककी सहायता की और पर्याप्त परिमाणमें च्यांग सरकारको युद्ध सामग्री दी। सैनिक स्थितिका अंदाज लगाने तथा मार्शल च्यांगकी सैनिक आवश्यकताओंका पता लगानेके लिए अमेरिकाने एक सैनिक-प्रतिनिधि-मण्डल भी चीनमें भेजा।

अमेरिकासे प्राप्त सैनिक सहायताके बल पर चीनकी च्यांग सरकारने जुलाई सन् १९४६ के प्रारम्भमें एक बार पुनः सभी मोर्चों पर कम्युनिस्ट सेनाओंके विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। चीनमें गृह-युद्धकी आग फिर भड़क उठी। आठ महीनों के युद्धके बाद ही च्यांग सरकारका हौसला पस्त-सा होने लगा। उसने युद्धका रूप बदल दिया। दो प्रमुख मोर्चोंको छोड़कर मार्शल च्यांग काई शेकने अन्य सभी मोर्चोंसे सेना हटा ली। इस प्रकार एकत्र सैनिकोंका विशाल समूह शांतुंग और उत्तरी शांसीके मोर्चों पर, जो विशाल युद्ध स्थलके दोनों पार्श्वोंमें थे, झोंक दिया गया। लेकिन इससे भी स्थितिमें कोई अंतर न पड़ा। दूसरे वर्षका आरम्भ होते-होते कम्युनिस्ट सेनाओंने युद्धका पासा पलट दिया। इससे पूर्व वे रक्षात्मक युद्ध कर रही थीं किन्तु अब उनका रुख आक्रमणात्मक हो गया। उन्होंने पीली नदी पारकर मार्शल च्यांग का व्यूह ध्वस्त कर दिया और युद्धकी प्रथम पंक्ति यांग्त्सी नदी तक बढ़ा दी। इसके साथ ही कम्युनिस्ट सेनाओंने शांतुंग, उत्तरी शांसी और उत्तरी चीनपर पुनः अधिकार कर लिया। नवम्बर, सन् १९४८ में उत्तर-पूर्वी चीनके लिओनिंग प्रान्तमें कम्युनिस्ट सेनाओंकी महत्वपूर्ण विजय हुई। इसके फलस्वरूप च्यांगकी सेनाओंकी रही-सही हिम्मत भी पस्त हो गयी।

जनवरी, सन् १९४९ मे कम्युनिस्ट फौजोंने दक्षिणी मोर्चे पर सुचाऊके निकटवर्ती क्षेत्रमे भी विजय प्राप्त की। यहा च्यांगकी मुख्य फौजे युद्ध कर रही थी, फलत युद्ध काफी हद तक निर्णयात्मक सिद्ध हुआ। साथ ही प्रमुख केन्द्र नानकिंग भी कम्युनिस्ट तोपोंकी मारके अन्दर आ गया। दूसरी ओर उत्तरी मोर्चे पर भी कम्युनिस्ट सेनाओंने कलांग, तिनसीन आदि महत्वपूर्ण नगरों पर कब्जा कर लिया। कुछ ही समयके अन्दर पेकिंग पर भी उनका अधिकार हो गया।

२१ अप्रैल, १९४९ को कम्युनिस्ट फौजोंने दक्षिण और उत्तर-पश्चिमसे बढ कर 'चीन मुक्ति अभियान'का श्रीगणेश किया। तीन ही दिनोंके अन्दर वे नानकिंग पर भी, जो बाइस वर्षोंसे च्यांग शासनका केन्द्र बना हुआ था, अधिकार करनेमे सफल हुए। इस प्रकार अप्रैलके उत्तरार्द्धसे दिसम्बर १९४९ तक कम्युनिस्ट फौजोंने ताईयुआन, हांगचाऊ, वूहान, सिआन, शांघाई, लानचाऊ, कैंटन, चुंगकिंग और चेनतुग आदि शेष प्रमुख नगरों पर भी अधिकार कर लिया था।

इस स्थितिसे दो मास पूर्व ही १ अक्तूबर, १९४९ को कम्युनिस्ट चीनके अध्यक्ष श्री माओत्से तुंगने चीनमे लोक-गणतंत्रकी स्थापनाकी घोषणा कर दी थी।

१५ नवम्बर, सन् १९४९ से लेकर अबतक चीनी लोक गणतंत्रके परराष्ट्र मंत्री श्री चाओ एन लाईने अनेक बार यह माग की कि "संयुक्त राष्ट्र संघकी सभी संस्थाओंसे कोमितांग (अब फारमोसा) सरकारके प्रतिनिधिको हटाकर उसका स्थान चीनी लोक गणतंत्रके प्रतिनिधिको प्रदान किया जाय। लेकिन रूसकी प्रबल सहायता और चीनी लोक गणतंत्रके प्रतिनिधिको संयुक्त राष्ट्र संघमे प्रतिनिधित्व प्रदान करनेसे सम्बन्धित प्रस्तावके पक्षमे १६ राष्ट्रों—रूस, पोलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया, भारत, बर्मा, इसराइल, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, श्वेत रूस, यूक्रेन, डेनमार्क, नीदरलैण्ड्स, युनाइटेड किंगडम, स्वीडन, यूगोस्लाविया और नारवे के मतके बावजूद संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाके अड़ंगेके कारण ही अबतक चीनी लोक गणतंत्रके प्रतिनिधिको संयुक्त राष्ट्र संघमें स्थान नही मिल सका है।[1] यह मजाक ही की बात है कि संयुक्त राष्ट्र संघकी सुरक्षा-समितिके पाँच स्थायी सदस्योंमें एक सदस्य ऐसी सरकारका भी प्रतिनिधि है जो वास्तवमे अपने देशका—चीनका प्रतिनिधि है ही नही। संयुक्त राष्ट्र संघमें चीनकी उस सरकारका

1. 'China Accuses' P. P. 5—Published by Foreigen Languages Press, Peking, China.

प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है जो चीनके विशाल भूभाग पर रहनेवाले लगभग साठ करोड़ निवासियोंका प्रतिनिधित्व करती है। वहाँ प्रतिनिधित्व प्राप्त है ६७ लाखकी जनसंख्यावाले फारमोसा द्वीपकी च्यांग सरकारके प्रतिनिधि को, जिसका अस्तित्व अमेरिकाकी फौजी ताकतके आधार पर ही कायम है।

चीन को मान्यता प्रदान किये जाने की समस्या के सम्बन्धमें अमेरिका की नीति का स्पष्टीकरण करते हु भारत-स्थित तत्कालीन अमेरिकन राजदूत श्री लाय डब्लू हेंडरसन ने कहा था—"पीकिंगमें स्थापित कम्युनिस्ट सरकारको अमेरिकाकी सरकारने चीनकी सरकारके रूपमें मान्यता नहीं प्रदान की है। इसका यह कारण नहीं है कि पीकिंग सरकारके अधिकतर सदस्य कम्युनिस्ट हैं। उसका निर्णय इस धारणा पर भी आधारित नहीं है कि पीकिंग सरकार चीनके उन क्षेत्रों पर नियंत्रण स्थापित करनेमें सफल नहीं हुई है जो प्रत्यक्षत: या अप्रत्यक्षत: सोवियट यूनियनके निय़ं णमें हैं। चीन सरकारने अपने अधिकारान्तर्गत क्षेत्रके अमेरिकी वाणिज्य दूत और व्यापारिक प्रतिनिधियोंके साथ जैसा व्यवहार किया, उसे देखते हुए *अमेरिकाकी सरकार पीकिंग सरकारको मान्यता देनेके प्रश्न पर* गम्भीरतापूर्वक तब तक विचार नहीं कर सकती, जब तक वह अन्तर्राष्ट्रीय तौर-त ीके द्वारा निर्धारित तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर सैकड़ों वर्षोंकी बातचीतके अनुभवों द्वारा निश्चित अन्तर्राष्ट्रीय दायित्वोंका निर्वाह करने एवं उनके अनुसार अमेरिकाके राजनीतिक तथा वाणिज्य प्रतिनिधियों और अमेरिकन नागरिकोंके साथ व्यवहार करनेका इरादा साफ-साफ जाहिर नहीं कर देती।"*

श्री हेंडरसनने पीकिंग सरकार द्वारा मुकदन में अमेरिकाके वाणिज्य दूतकी गिरफ्तारीको सामने रखकर वस्तु-तथ्य को छिपानेकी चेष्टा की। यह आइजनहावर प्रशासनमें सुदूरपूर्व सम्बन्धी मामलोंके उपविदेश मंत्री श्री वाल्टर एस० राबर्टसनके इस कथनसे सिद्ध हो जाता है—"फारमोसामें चीनकी राष्ट्रवादी सरकार (पलायित च्यांग सरकार) को ी जाने वाली अमेरिकी सहायता एक स्वतंत्र शियाई सरकारकी स्वतंत्रताकी रक्षा करनेमें कम निर्णायक सिद्ध नहीं हुई। सात े बेड़ेकी छत्रछायामें आधुनिक सशस्त्र सेनाका संघटन करनेमें हमने चीनकी राष्ट्रवादी सरकारको सहायता पहुँचायी। इस प्रकार संसारके सभी भागोंमें

* इंडियन कौंसिल आफ वर्ल्ड अफेयर्स (नयी दिल्ली) के सामने २७ मार्च, १९५० को दिया गया भाषण।

रहनेवाले स्वतंत्र चीनियोंको आज एक ऐसा नुक्ता मिल गया है जिसको आधार बनाकर वे अपनेको संघटित कर सकते हैं और अपने राष्ट्रकी स्वाधीनता और महान् परम्पराके प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त कर सकते हैं।"

दरअसल अमेरिका साम्यवादी चीनको अपने लिए खतरा समझता है और वह नहीं चाहता कि चीनकी ताकत बढ़े। प्रश्न-विशेष पर चाहे जो मत व्यक्त किया जाय लेकिन मूलमें सैनिक कारणोंकी प्रधानता है। अमेरिकाके परराष्ट्र मंत्री (आइजन हावर प्रशासन) श्री डलेस इस तथ्यका स्पष्टीकरण स्वतः कई बार कर चुके हैं। आपका यह कथन स्थितिको आइनेकी तरह साफ कर चुका है—"यदि रूसी या चीनी साम्यवादी जापान पर नियंत्रण स्थापित करनेमें सफल हो गये तो वे चीनकी विशाल जनशक्तिको शस्त्रसज्जित करनेके लिए जापानकी विशाल औद्योगिक शक्तिका उपयोग एशिया, मंचूरिया और चीनसे प्राप्त होनेवाले कच्चे मालसे हथियारोंका निर्माण करनेमें कर सकेंगे।"[1]

पश्चिमी राष्ट्रोंके गुटके नेता अमेरिकाकी चीन-विषयक नीति एशियाकी शांतिके लिए समस्या बन गयी है। रूसी गुटके देश इसे 'आक्रमणात्मक नीति' कहते हैं। चीन दूसरे गुटका सदस्य है। इस गुटसे उसका व्यावहारिक और सैद्धान्तिक दोनों प्रकारका सम्बन्ध है।

ऊपर कहा जा चुका है कि चीनी लोक गणतंत्रकी स्थापनाके बाद ही रूस तथा उसके मित्र देशोंने नयी चीन सरकारसे राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित करने की घोषणा कर दी थी। तत्पश्चात् लगभग साढ़े तीन मासके अन्दर ही चीन और रूसने पारस्परिक संधि और समझौतेके एक मसविदे पर मास्कोमें हस्ताक्षर किये। यह सन्धि और समझौता १४ फरवरी, सन् १९५० को हुआ। इसमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण समझौता चांगचुन रेलवे और पोर्टआर्थर के सम्बन्धमें था। इसके अनुसार रेलवेकी सारी सम्पत्ति बिना किसी तरहका मुआविजा लिये चीनको हस्तान्तरित करनेका निर्णय किया गया था। जिस संधि, समझौते और करार पर दोनों देशोंने १४ फरवरी, सन् १९५० को हस्ताक्षर किये वे संक्षेपमें इस प्रकार हैं—(१) चीनी लोक गणतन्त्र और सोवियत रूसके बीच मैत्री और पारस्परिक सहयोग सन्धि, (२) चीनकी चांगचुन रेलवे, पोर्टआर्थर और डेरेनसे

१. विदेश मन्त्री के रूप में पहली बार टेलीविजन पर किये गये भाषण से—२८ जनवरी, सन् १९५३।

सम्बन्धमें करार जिसके अनुसार जापानी शांति सन्धिके बाद बिना किसी प्रकारका मुआविजा लिए रेलवेकी सम्पूर्ण सम्पत्ति, पोर्ट आर्थर और डेरेनका अधिकार चीनको हस्तान्तरित करनेका निर्णय किया गया, (३) आर्थिक सहायता सम्बन्धी करार। इसके अनुसार रूसने चीनके लिए ३००,०००,००० डालर का दीर्घ-कालीन ऋण स्वीकार किया।

उपर्युक्त सन्धि और करारों के सम्बन्धमें सितम्बर १९५४ में पुनः दोनों देशोंकी सरकारोंके बीच वार्ता हुई और १२ अक्तूबर १९५४ को पुनः उन्हें दोहराया गया। इस सम्बन्धमें हुई बातचीतके सम्बन्धमें प्रकाशित संयुक्त विज्ञप्तिमें कहा गया था कि "सोवियत संघके सरकारी प्रतिनिधि-मंडलने, चीनी सरकारके चीन लोक गणतंत्रकी पाँचवीं वर्षगाँठके समारोहमें भाग लेनेके आमंत्रण पर २९ सितम्बर, १९५४ से १२ अक्तूबर, सन् १९५४ तक चीनकी यात्रा की।... सोवियत सरकारी प्रतिनिधिमण्डलने यात्रा-कालमें चीनी लोक-गणतन्त्रके अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, कम्युनिस्ट पार्टीकी केन्द्रीय समितिके सचिवालयके सदस्य एवं राष्ट्रीय लोक कांग्रेसकी स्थायी समितिके अध्यक्षसे वार्ता की।...चीनी लोक-गणतन्त्र और सोवियत संघके बीच १४ फरवरी, १९५० को मित्रता, सहयोग और पारस्परिक सहायता सन्धिके अनुरूप, घनिष्ठ सहयोगके सम्बन्ध स्थापित हो चुके हैं। चीनी लोक-गणतन्त्रकी सरकार और सोवियत संघकी सरकार यह घोषणा करती है कि चीन और सोवियत संघके बीच जो मैत्री सम्बन्ध स्थापित हो चुके हैं उनके आधार पर समानता, परस्पर लाभ और एक-दूसरेकी प्रभुसत्ता और प्रादेशिक अखण्डताके सम्मानके सिद्धान्तोंके अनुसार दोनों देशोंका घनिष्ठ सहयोग और भी विकसित होगा।"

पोर्टआर्थरके संयुक्त रूपमें प्रयुक्त होनेवाले चीनी समुद्री अड्डेसे सोवियत सेनाओंको हटाने और इसे पूर्णतः चीनी लोक गणतन्त्रके हाथोंमें सौंप देनेके सम्बन्धमें प्रकाशित संयुक्त विज्ञप्ति (१२ अक्तूबर, १९५४) में कहा गया था कि कोरियाई युद्ध समाप्त हो जाने और हिन्दचीनमें शांति स्थापित हो जानेके बाद, सुदूरपूर्वकी अन्तर्राष्ट्रीय स्थितिमें जो परिवर्तन हुए हैं, उन्हें दृष्टिमें रखते हुए और चीनी लोक-गणतंत्रकी सुदृढ़ राष्ट्रीय सुरक्षाओंको ध्यानमें रखते हुए, दोनों देशोंके बीच दिन-प्रति-दिन मजबूत हो रही मैत्री और सहयोगके सम्बन्धोंके प्रकाशमें, चीनी लोक गणतन्त्रकी सरकार और सोवियत संघकी सरकारने यह निश्चय किया है

कि संयुक्त रूपमें प्रयुक्त होनेवाले पोर्टआर्थरके समुद्री अड्डे से सोवियत सेनाएँ हट जायँगी और इस क्षेत्रका सम्पूर्ण साज-सामान, बिना किसी मुआवजेके चीनी लोक-गणतन्त्रकी सरकारको हस्तान्तरित कर दिया जायगा।"

"दोनों पक्ष यह स्वीकार करते हैं कि सोवियत सेनाओंको हटाने और चीनी लोक-गणतन्त्रकी सरकारको पोर्टआर्थरके समुद्री अड्डेका साज-सामान हस्तान्तरित करनेके कामको पूरा करनेकी जिम्मेदारी उस संयुक्त चीन सोवियत कमीशन की होगी जो १४ फरवरी, सन् १९५० के समझौतेके अनुसार पोर्टआर्थरमें स्थापित किया गया था। सेनाओंको हटाने और साज-सामान हस्तान्तरित करनेका काम ३१ मई, सन् १९५५ तक पूरा हो जायगा।"

१२ अक्तूबर, १९५४ को ही चीन और रूसके बीच ज्वाइंट स्टाक कम्पनियों के शेयरोंके हस्तान्तरण तथा वैज्ञानिक और प्राविधिक सहयोग एवं लांचो-उरुमची-अल्मा अता रेलवेके निर्माणके सम्बन्धमें हुए समझौते पर भी अलग-अलग संयुक्त विज्ञप्तियाँ प्रकाशित की गयी थीं। इनमेंसे प्रथम के सम्बन्धमें प्रकाशित विज्ञप्ति में कहा गया था कि "चीनी लोक गणतन्त्रके सिङ् क्याङ् प्रान्तमें लौहहीन और दुर्लभ धातुओंको निकालने, पेट्रोलियम निकालने, डेरेकम समुद्री जहाजोंके निर्माण और मरम्मतके लिए और हवाई यातायातका संघटन और संचालन करने के लिए १९५०–५१ के समझौतेके अनुसार जो चीनी-सोवियट संयुक्त कम्पनियाँ कायम की गयी थीं, उनके सम्बन्धमें चीनी लोक-गणतन्त्र और सोवियत संघकी सरकारोंमें यह समझौता हो गया है कि इनमें जो सोवियत शेयर हैं, वे १ जनवरी, सन् १९५५ से चीनको हस्तान्तरित कर दिये जायँगे। सोवियत शेयरोंका मूल्य, अनेक वर्षोंके दौरानमें, मालकी सप्लाईके रूपमें सोवियत संघको वापस कर दिया जायगा। वही माल सप्लाई किया जायगा जो चीन साधारणतः निर्यात करता है।"

दूसरे समझौतेसे सम्बन्धित संयुक्त विज्ञप्तिमें कहा गया था कि "समझौतेकी शर्तोंके अनुसार, चीनी लोक-गणतन्त्रकी सरकार तथा सोवियत समाजवादी जनतन्त्रकी सरकार इस बात पर सहमत है कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाकी प्रत्येक शाखामें अनुभवके आदान-प्रदान द्वारा वैज्ञानिक और प्राविधिक सहयोगको मूर्त रूप दिया जायगा। दोनों पक्ष एक-दूसरेको प्राविधिक तथ्य तथा आँकड़े एवं सम्बन्धित सूचनाएँ प्रदान करेंगे, प्राविधिक सहायता देनेके लिए विशेषज्ञ भेजेंगे और

विज्ञान तथा शिल्प-विज्ञानके क्षेत्रमें अपनी खोजसे एक-दूसरेको परिचित करायेंगे। दस्तावेजोंकी नकलें तैयार करनेसे सम्बन्धित असली लागतके सिवा, दोनों पक्षों के बीच प्राविधिक तथ्य तथा आँकड़ोंका आदान-प्रदान निःशुल्क होगा। समझौते को कार्यान्वित करनेकी रूपरेखा तैयार करनेके लिए चौदह सदस्योंका जिनमें सात रूसी और सात चीनी सदस्य होंगे, एक आयोग नियुक्त किया जायगा। बारी-बारीसे इसकी बैठकें पीकिंग और मास्कोमें होंगी। यह समझौता पाँच साल तक वैध रहेगा।"

रेलवे समझौतेसे सम्बन्धित विज्ञप्ति इस प्रकार थी—"अपने पारस्परिक आर्थिक तथा सांस्कृतिक सम्बन्धों को मजबूत बनानेकी दृष्टिसे, चीन लोक-गणतंत्र की और सोवियत समाजवादी जनतन्त्र संघकी सरकारोंने यह तय किया है कि दोनों पक्ष, निकट भविष्यमें, लांचोसे उरुमची (चीनी क्षेत्रमें) के रास्ते अल्मा अता (सोवियत क्षेत्रमें) तक एक रेलवेका निर्माण करेंगे। चीनी क्षेत्रमें रेलवेके निर्माण की जिम्मेदारी चीन पर और सोवियत क्षेत्रमें रेलवेके निर्माणकी जिम्मेदारी रूस पर होगी। चीनी क्षेत्रमें रेलवेके निर्माण करनेमें सोवियत सरकार चीनी सरकारको चतुर्मुखी प्राविधिक सहायता देगी।"

ऊपरकी बातोंसे नये चीनकी राजनीतिक स्थितिकी साधारण झाँकी मिल जाती है। इनके आधार पर उसके अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्वका अनुमान लगाया जा सकता है। उसकी अपनी शक्ति दक्षिण-पूर्वी एशियाके राज्योंको जिनमेंसे अधिकतर साम्राज्यवादी शोषणके शिकार काफी लम्बे अर्से तक रहे हैं और कुछ आज भी हैं, किस सीमा तक और किस रूपमें प्रभावित कर सकती है, यह अनुमान लगाना भी कठिन नहीं है। भारतके प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरूने इस स्थितिका तथा इससे सम्बन्धित समस्याओंका विश्लेपण और समाधान किस दृष्टिसे किया आगेके प्रकरणोंमें स्पष्ट करनेकी चेष्टा की जायगी। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि उनकी नीति परस्पर विरोधी गुटोंमें खिंचावको कम करने तथा शांति का मार्ग प्रशस्त करनेमें कुछ हद तक सफल हुई है। यह केवल अमेरिका या चीनने ही स्वीकार नहीं किया, बल्कि विश्वके प्रायः सभी प्रबुद्ध राष्ट्र इसे स्वीकार कर चुके हैं। ऐसी दशामें एंग्लो-अमेरिकी गुटके निकट समझा जानेवाला भारत यदि इस गुटके विरोधियोंको भी अपनी ओर आकृष्ट कर सकनेमें सफल हो गया तो यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

इतिहास का प्रभाव

भारतीय स्वातंत्र्य-संग्रामके सेनानीके रूपमें पं० जवाहरलाल नेहरूने काफी लम्बे अर्से तक शोषण और उत्पीड़न, दलन और त्रासका विरोध किया। उन्होंने न केवल भारतमें अंग्रेजोंके अत्याचारके विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द की अपितु एशिया और अफ्रिका तथा यूरोपमें भी जहाँ-जहाँ उन्होंने मानवताको पीड़ित देखा, वहाँ-वहाँके निवासियोंके प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त की। उन्होंने दक्षिण अफ्रीकामें गोराशाहीको निरंकुशतापूर्ण शासन करते देखा तो उसके विरोध में अपनी आवाज उठायी। अबीसीनियामें इटलीके तानाशाह मुसोलिनीके अत्याचारोंसे वे इतने अधिक मर्माहित हुए कि मुसोलिनीके आमंत्रण पर भी उससे मिलनेसे इनकार कर दिया। स्पेनमें फ्रांकोकी पाशविकताका विरोध भी उन्होंने किया। चीन पर जापानके आक्रमणकी भर्त्सना भी उन्होंने की और १९३८ में गुलाम भारतमें रहते हुए उन्होंने युद्धमें आहत चीनियोंकी सेवा-सुश्रूषाके लिए डा० अटल के नेतृत्वमें परिचारकोंका एक दल चीन भिजवाया।

सम्पूर्ण एशिया महाद्वीपके प्रायः सभी देश सदियों तक साम्राज्यवादी देशोंके शिकार रहे हैं। इनमेंसे कई राष्ट्र अब स्वतंत्र हो चुके हैं। शेष राष्ट्रोंके वक्षःस्थल पर साम्राज्यवादका राक्षस अब भी पदाघात कर रहा है। भारत भी एशियाके पराधीन राष्ट्रोंमेंसे एक था। अपने विकास और अपनी स्वतंत्रताके युगमें उसने एशियाके राष्ट्रोंको सांस्कृतिक रूपमें बहुत प्रभावित किया था। इसके इतिहास का नेहरूजी पर बहुत प्रभाव पड़ा है। फलस्वरूप एशियाकी समस्याओंकी ओर वह विशेष रूपसे आकृष्ट रहे हैं और इनका अध्ययन भी उन्होंने विशेष रूपसे किया है। भारतकी पराधीनताके समय उसकी स्वतंत्रताके युद्धमें लगे रहकर भी नेहरू जी ने एशियाको कभी नहीं भुलाया। स्वतंत्रोत्तर भारतमें प्रधान मंत्रीके पद आरूढ़ होनेके बाद भी एशियाके देश उनकी आँखोंसे ओझल नहीं हुए। उनके प्रति नेहरू जी की सहानुभूतिमें आज भी कोई कमी नहीं हुई है। उन्होंने जब भी अन्तर्राष्ट्रीय

जगतकी घटनाओंमें भारतके योगदानकी चर्चा की, तभी सम्पूर्ण एशिया महाद्वीपका उल्लेख अवश्य किया। द्वितीय महायुद्धकी समाप्तिके बाद एशियाई देशोंमें स्वतन्त्रता प्राप्त करनेकी जो तीव्र इच्छा जागरित हुई, उसको उन्होंने अत्यधिक निकट से देखनेकी चेष्टा की। समय-समय पर उन्होंने अपनी भावनाओंकी ओर सामान्यत: पूरे विश्वका और विशेषत: साम्राज्यवादी देशोंका भी ध्यान आकृष्ट किया। २४ अक्तूबर, सन् १९४९ को कनाडाकी संसदके समक्ष भाषण करते हुए नेहरूजी ने बड़े ओजस्वी शब्दोंमें एशियाई राष्ट्रोंकी राष्ट्रीय इच्छाओंको व्यक्त किया था। उन्होंने कहा था—"एशिया, जो महाद्वीपोंका जनक है और जिसकी गोदमें इतिहास की सभ्यताओंका बड़ा भाग फूला-फला है, आज पुन: जाग उठा है। इसकी सद्य: प्राप्त स्वतंत्रताका अभ्युदय प्रमत्त है; क्योंकि पिछली दो शताब्दियोंमें इसकी प्रगति रोकी गयी, फलतः झुंझलाहट व्यापक रही। नयी शक्तियाँ जाग उठी हैं। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता खोजनेवाली ये शक्तियाँ तत्वत: राष्ट्रवादी रही हैं। जनताकी आर्थिक दशाको सुधारनेकी इच्छा इनकी उत्प्रेरक रही। जहाँ राष्ट्रवादका अवरोध हुआ, वहाँ संघर्ष हुआ—जिस प्रकार कि आज वहाँ संघर्ष हो रहा है, जहाँ उसको दबाया जा रहा है। उदाहरणार्थ—दक्षिण-पूर्वी एशियामें। विश्वके इस भाग और वास्तवमें एशियाके बड़े भागमें वर्तमान परेशानियाँ और असन्तोष अवरुद्ध स्वतन्त्रता और गहरी गरीबीका प्रतिफल है। स्वतन्त्रोदयको गतिशील बनाना और गरीबीको दूर करना ही परेशानियों और असन्तोषको दूर करने का उपाय है। यदि यह हो जाता है तो एशिया शान्तिकी सुस्थिरताका प्रबल कारण होगा। एशियाका दर्शन शान्तिका दर्शन रहा है, और है।" * आल इण्डिया रेडियोके दिल्ली स्टेशनसे नेहरूजी ने २४ जनवरी, सन् १९५१ को जो भाषण ब्राडकास्ट किया था, उसमें उन्होंने कहा था—"अब भी कभी-कभी एशियाके महान् राष्ट्रों के साथ पुराने तरीकेसे व्यवहार करनेकी कोशिश की जाती है। वर्तमान युग का एक बड़ा तथ्य है—नव एशियाका अभ्युदय। इसने शक्ति-संतुलनकी पुरानी नीति (यूरोपकी) को स्वाभाविक रूपमें उलट दिया है। यह परिवर्तन महसूस किया ही जाना चाहिये।"†

---

* लेखक की पुस्तक—'अमेरिका में नेहरू, पृ० सं० १०८—९।

† Jawahar lal Nehru's Speeches, 1949—1953, P. 139.

2899

एशियाई देशोंमें चीनके प्रति प० जवाहरलाल नेहरूका आकर्षण अन्य देशों की अपेक्षा अधिक रहा है। इसका कारण चीनका इतिहास जो सदियोंकी सभ्यता और संस्कृतिके विकास-क्रमकी उत्तेजक, आकर्षक और प्रेरणादायी प्रवृत्तियोंसे भरा पड़ा है।

चीनके सम्बन्धमें पंडित जवाहरलाल नेहरूकी भावनाओंको समझनेके लिए एशियाके सम्बन्धमें उनके विचारोंका अध्ययन करना होगा। एशियाके सम्बन्धमें उनकी भावनाओंका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए भारतके साथ एशियाके अन्य देशोंके अति प्राचीन सांस्कृतिक सम्बन्धोंकी मधुर स्मृतियाँ ताजी करनी होंगी। इस क्रममें, भारत और चीनके इतिहासमें, दोनोंके सांस्कृतिक सम्बन्धों पर प्रभाव डालनेवाले जो अध्याय खुलेंगे, उनके प्रति नेहरूजीकी अनुरक्ति चीनके प्रति उनके आकर्षणको आपसे आप स्पष्ट कर देगी।

चीन और भारत, दोनों महान् देश हैं। दोनोंका सांस्कृतिक सम्बन्ध सदियों पुराना है। समय-समय पर एकने दूसरेको अपने ज्ञानसे आलोकित किया है। ज्ञान-रश्मियोंके इस आदान-प्रदानका नेहरूजी पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। वे इसका उल्लेख करते थकते नहीं हैं। यह बात उन्होंने न जाने कितनी बार दोहरायी होगी कि "हमारे दोनों मुल्कोंके पुराने रिश्ते हजारों वर्षके हैं और इन हजारों वर्षोंमें बहुत ऊँचा-नीचा हमारे मुल्कोंने देखा है। दोनों देश एक दूसरेसे मिले और कितने गैर मुल्कोंसे मिले; लेकिन एक अजीब इत्तिफाक है कि ये दोनों कौमें, बड़ी जानदार कौमें, दुनियाँमें दूर-दूर तक फिरती रहीं और अपना पैगाम, अपने खयालात, अपने विचार, अपने साहित्य, अपने धर्म और अपनी कलाओंको जगह-जगह ले जाती रहीं लेकिन कभी भी इन हजारों वर्षोंमें इन दोनों मुल्कोंमें लड़ाई नहीं हुई। ऐसी मिसाल दुनियाके इतिहासमें मिलनी मुश्किल है।"*

नेहरूजी प्रकृत्या भावुक हैं। जंगलों और गाँवोंको अपनी गोदमें समेटकर तीव्र गतिसे निरन्तर आगे बढ़नेवाली नदियोंमें वह अद्भुत शक्तिका दर्शन करते हैं और उससे प्रेरणा ग्रहण करते हैं। उत्तुङ्ग गिरि-शृङ्खला उन्हें मनुष्यकी शक्ति को चुनौती देती प्रतीत होती है। जिसकी प्रकृति ऐसी हो, उसे चीन और भारतके उपर्युक्त पारस्परिक सम्बन्धकी स्मृति जो अपूर्व आनन्द प्रदान करती होगी, उसका

* नयी दिल्ली में चीन के प्रधान मन्त्री श्री चाओ एन लाई के सम्मान में आयोजित राजभोज में नेहरूजी का भाषण।

अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। नेहरूजीकी पुस्तकोंमें और उनके भाषणोंमें उपयुक्त अवसर पर यह आनन्द आपसे आप फूट पड़ा है। जहाँ कहीं भी उन्होंने चीन और भारतका उल्लेख किया, वहीं उन्होंने गौरवका अनुभव किया है। पुराने सम्बन्धोंको जब वह याद करते हैं, हर्ष और उल्लाससे उनका चेहरा चमक उठता है। यह कल्पनाकी बात नहीं है। जिन्होंने नेहरूजीके साहित्यका अध्ययन किया है, वे सरलतासे यह समझ सकते हैं। 'डिसकवरी आफ इण्डिया' नामक अपनी पुस्तकमें उन्होंने चीनके सम्बन्धमें जो परिच्छेद लिखा है, उसका एक-एक शब्द उनकी मनोदशाका दर्पण है। इस पुस्तकके 'भारत और चीन' शीर्षक अध्यायके अन्तके अनुच्छेदका प्रत्येक शब्द मैत्री और सद्भावनाकी भावना से सराबोर है। चीनसे पुनः मैत्री सम्बन्ध कायम होनेकी सम्भावनाके सम्बन्धमें उनकी उत्सुकता उसमें फूट पड़ी है। चीनके प्रति उनकी ग्यारह वर्ष पूर्वकी भावना का यह प्रमाण भारत और चीनके वर्तमान मैत्री और सद्भावना-पूर्ण सम्बन्ध में उनकी प्रेरणाओंका ज्वलन्त प्रतीक है। उस समय अर्थात् ग्यारह वर्ष पूर्व उन्होंने लिखा था "और अब भाग्य-चक्र पूरा घूम चुका है। भारत और चीन पुनः एक दूसरेकी ओर देखने लगे हैं। उनके मस्तिष्कमें पुरानी स्मृतियाँ ताजी हो रही हैं। पुनः एक अन्य समयके ही यात्री पहाड़ोंको पार कर या उनपरसे उड़कर सद्भावनाके संदेश लाने लगे हैं जिनसे मैत्रीके मजबूत बन्धन कायम होंगे।"* यह आशा उस समय फलवती हुई दिखाई दी हो तो किसीको आश्चर्य न होना चाहिये जब स्वतंत्र और सजीव भारतके प्रधान मंत्री-पद पर नेहरूजी स्वयं प्रतिष्ठित हों और विदेशोंसे भारतके सम्बन्ध-सूत्रका संचालन स्वयं कर रहे हों।

जिस प्रकार नेहरूजी चीन-भारतके सांस्कृतिक सम्बन्धोंसे प्रभावित हैं, उसी प्रकार वह दोनों देशोंकी समान राजनीतिक दुर्दशासे भी प्रभावित रहे हैं। साम्राज्यवादियोंने इन दोनों देशोंका शोषण किया, इन्हें लूटा और रौंदा। यद्यपि चीनकी गुलामीका अन्त भारतके गुलामीके बन्धन टूटनेसे बहुत पहले ही हो गया था तथापि चीनको पुन गुलाम बनानेका प्रयास भी उस समय आरम्भ हो चुका था जब पंडित जवाहरलाल नेहरू भारतमें साम्राज्यवादी ताकतसे जूझ रहे थे।

* 'डिसकवरी आफ इण्डिया', भारत और चीन' शीर्षक अध्याय का अन्तिम अनुच्छेद।

गुलामीके घाव ताजे थे। इसकी पीड़ा ताजी थी। इससे जो मर्मान्तक कष्ट होता है, उसका अनुभव वह कर रहे थे। ऐसे समयमें चीनको पुनः गुलाम बनानेके प्रयासको देखकर उसकी ओर उनके खिंचावमें वृद्धि स्वाभाविक ही थी। कौन नहीं जानता कि चीन पर जापानके आक्रमणसे वे तिलमिला उठे थे? इसका कारण केवल यही नहीं था कि चीनकी स्वतंत्रता छिन रही थी। इस प्रयासमें उन्हें उन वृत्तियोंका गला घुटता भी दिखाई देता था जो चीनके अभ्युदयकी जननी है और जिनका विकास एशियाका मस्तक ऊँचा करनेवाला सिद्ध हुआ। चीनको वे उत्साहका स्रोत समझते रहे हैं। यही कारण है कि जहाँ एक ओर उन्होंने चीनके प्राचीन इतिहासका अध्ययन किया, वहीं दूसरी ओर इसके वर्तमानका अध्ययन भी वह बराबर करते रहे। लगभग सोलह वर्ष पूर्वकी उनकी चीन-यात्रा इसका प्रमाण है। इससे भी पूर्व चीनके सम्बन्धमें अपनी उत्सुकता उन्होंने अपनी 'आत्म-कथा' में व्यक्त की थी। इसमें चीनके निवासियोंकी राजनीतिक गतिविधिके सम्बन्धमें उनकी अभिरुचि भली-भाँति अभिव्यक्त है।

सन् १९२७ में ब्रुसेल्समें साम्राज्यवाद पीड़ित देशोंका सम्मेलन हुआ था। इस सम्मेलनमें जावा, हिन्द-चीन, फिलस्तीन, शाम, मिस्र, चीन आदि देशोंके प्रतिनिधियोंने और उत्तरी अफ्रीकाके अरब तथा अफ्रीकाके हब्शियोंके प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। इस सम्मेलनमें ही साम्राज्यवाद विरोधी लीगकी भी स्थापना हुई थी। इस लीगकी संरक्षिका श्रीमती सनयात सेन भी रहीं जो इस समय चीनी लोक-गणतन्त्रकी उपाध्यक्षा हैं।

नेहरूजी ने भी इस सम्मेलनमें भाग लिया था। इसका उल्लेख उन्होंने अपनी आत्मकथामें किया है। एतत्सम्बन्धी विवरणमें चीनके प्रतिनिधियोंकी सरगर्मी का उल्लेख विशेष रूपसे मिलता है। पुस्तकका सम्बन्धित अंश इस प्रकार है—
"इन लोगोंमें सबसे ज्यादा मशहूर और क्रियाशील वे चीनी थे जो वहाँकी कोमिंतांग पार्टीके गरमदलके थे। यह पार्टी उन दिनों चीनमें तूफानकी तरह बढ़ रही थी और उसकी अविराम गतिके आगे पुराने जमानेके सामंतवादी तत्व जमीनमें लुढ़कते नजर आ रहे थे। चीनके इस नये चमत्कारके सामने साम्राज्यवादी ताकतोंने भी अपनी तानाशाही आदतों और धौंस-डपटको छोड़ दिया था। ऐसा मालूम पड़ता था कि अब चीनकी एकता और उसकी आजादीके मसलेका हल होनेमें ज्यादा देर न लगेगी। कोमिंतांग खुशीसे फूलकर कुप्पा हो गयी थी लेकिन

उसके सामने जो कठिनाइयाँ आनेवाली थीं, उन्हें भी वह जानती थी। गालिबन इस पार्टीके वामपक्षके लोगोंने ही जो दूसरे देशोंके कम्युनिस्टोंसे मिलते-जुलते लोगोंसे मिलकर काम करते थे, इस तरहके प्रचार पर जोर दिया जिससे वे दूसरे मुल्कोंमें चीनकी राष्ट्रीय स्थितिको और घर पर पार्टीकी स्थितिको मजबूत कर सकें। उस समय पार्टी दो या तीन परस्पर प्रतिस्पर्द्धी और कट्टर दलोंमें नहीं बँटी थी। इसलिए कोमिताङ्गके यूरोपियन प्रतिनिधियोंने पददलित कौमोंकी कान्फ्रेंस करनेके विचारका स्वागत किया, शायद उन्होंने ही कुछ और लोगोंसे मिलकर इस विचारको पहले-पहले जन्म दिया था।"[1]

यह पहले ही कहा जा चुका है कि चीनकी राजनीतिक हलचलोंमें नेहरूजी की दिलचस्पीकी वजह भारत और चीनकी समान राजनीतिक दुर्दशाकी अवस्था ही रही है। इसमें नेहरूजीकी राजनीतिक दूरदर्शिता साफ-साफ नजर आती है। वह चीन और भारतकी मैत्री पर इतना जोर क्यों देते हैं? दोनों देश एशियाके महान् देश हैं। प्राकृतिक साधनोंकी दृष्टिसे दोनों देश सम्पन्न हैं। दोनों देशोंकी जन-शक्ति विशाल है। एशियामें इन दोनोंकी मैत्री, साम्राज्यवादका जनाजा उठा देगी—आरम्भसे ही नेहरूजीकी यही भावना है। वह यह मानते रहे कि पराधीनताकी जञ्जीरें तोड़नेके प्रयासमें चीनकी सहानुभूति भारतके लिए लाभदायक होगी। साथ ही वह साम्राज्यवाद-पीड़ित चीनकी सहायता करना भी उचित और आवश्यक मानते थे और इसे भारतके राष्ट्रवादियोंका कर्त्तव्य समझते थे। उनकी भावनाओंका उस समय भी मूल्य था; क्योंकि वे भारतकी स्वतन्त्रता के लिए ब्रिटिश सत्तासे लोहा लेनेवाली भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके न केवल अग्रणी नेता हो चुके थे, बल्कि कांग्रेसकी परराष्ट्र-नीतिके नियामक भी थे। कांग्रेस के इतिहासके अनेक पृष्ठ, अन्य देशोंके सम्बन्धमें उसकी साम्राज्यवाद-विरोधी काररवाईसे भरे पड़े हैं। चीन पर जापानके आक्रमणकी भर्त्सना करते हुए कांग्रेसने सन् १९३७ में एक प्रस्ताव पास किया था जिसमें कहा गया था कि "कांग्रेस महासमिति चीनमें जापानी साम्राज्यवादके आक्रमणसे चिन्तित है और वह नागरिक जनता पर बम बरसाये जानेके निर्दय व्यवहार और आतंकसे परिचित है। असाधारण परेशानियों और विषमताओंके होते हुए भी अपनी स्वतन्त्रता और अपनी

१. मेरी कहानी—सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन (१९४९), पृष्ठ संख्या २।

एकताके लिए चीनी जनता वीरतापूर्वक जो संघर्ष कर रही है, महासमिति उसकी प्रशंसा करती है। राष्ट्रीय संकटके समय आन्तरिक एकता पर महासमिति चीनी जनताको बधाई देती है। इस राष्ट्रीय विपत्तिके अवसर पर चीनी जनताके प्रति महासमिति अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट करती है और उसकी आजादी की लड़ाईमें भारतीय जनताके पूर्ण समर्थनका आश्वासन देती है। महासमिति भारतवासियोंसे यह माँग करती है कि वे चीनी जनताके प्रति सहानुभूतिके प्रतीक-स्वरूप, जापानी चीजोंका इस्तेमाल करना बन्द कर दें।"[1]

विदेशी मामलोंमें कांग्रेसकी दिलचस्पी नेहरूजीकी ही प्रेरणाका शुभ परिणाम था। चीनके सम्बन्धमें यह दिलचस्पी सक्रिय भी रही है। कांग्रेसने चीन पर जापानी आक्रमणका विरोध प्रकट करते हुए केवल प्रस्ताव ही नहीं पास किया था। उसने डाक्टर अटलके नेतृत्वमें घायलोंकी सेवा-सुश्रूषाके हेतु एक चिकित्सक-मण्डल भी चीनमें भेजा था। चीन-निवासियोंने इस चिकित्सक-मण्डल के कार्योंकी काफी प्रशंसा की। इस मण्डलके एक सदस्य डाक्टर कोटनिसका चीन में ही देहावसान हुआ।

नेहरूजी ने चीन पर साम्राज्यवादी जापानके बर्बर आक्रमणके विरुद्ध यूरोप में भी आवाज उठायी थी। २ जून, सन् १९३८ को वह भारतसे यूरोपके लिए रवाना हुए थे। मलायामें भारतीय व्यापारियों तथा मिश्रदारियोंमें नहाम पाशा और वफ्द दलके दूसरे नेताओंसे मिलनेके बाद वे सीधे बार्सीलोना (स्पेन) चले गये और वहाँ स्पेनकी स्थितिका निकटसे उन्होंने अध्ययन किया। वहाँसे वे पेरिस और पेरिससे इङ्गलैण्ड गये। इङ्गलैण्डमें उनका कार्य-क्रम विविध प्रकारका था। यहाँसे वे एक दृष्टि डालकर चीन, भारत तथा संसारके अन्य भागोंमें छिड़े हुए संघर्षको देख सकते थे। स्पेनके युद्धकी दूसरी सालगिरहके दिन ट्राफल्गर स्क्वायरमें उन्होंने नेलसनकी मूर्तिके नीचे खड़े होकर अपने भाषणमें कहा था—"हमारे लिए फासिज्म नया नहीं है। हम इसका अनुभव पिछले डेढ़ सौ वर्षोंसे कर रहे हैं। हम जानते हैं कि स्पेन और चीनको किन परिस्थितियोंसे होकर गुजरना पड़ रहा है। हम इन देशोंका समर्थन करते हैं और उनसे शिक्षा ग्रहण करते हैं।"[2]

---

१. डा० पट्टाभि सीतारामैया, 'कांग्रेस का इतिहास' खण्ड २, पृष्ठ संख्या १०३।

२. कांग्रेस का इतिहास—ले० पट्टाभि सीतारामैया, दूसरा खण्ड—पृष्ठ संख्या ३०।

यूरोपसे लौटते समय नेहरूजी सन् १९३९ में चीनमें भी गये थे। वहाँ उनकी बातें केवल च्याङ्ग काईशेकके पक्षसे हो सकी थीं। अधिक दिनों तक न रुक सकनेके कारण वह अन्य लोगोंसे मिल न सके थे। वहाँ उन्होंने चीनके प्रति भारतके राष्ट्रवादियोंकी हमदर्दी जाहिर की थी और भारतकी स्वतन्त्रताके मामले में उनकी सहानुभूति प्राप्त की। इधर भारतमें पेचीदा प्रश्न पैदा हो गया था। यूरोपीय युद्धके कारण ब्रिटिश हुकूमत अपने साथ भारतको भी युद्ध-लिप्त कर रही थी। इस विषम परिस्थिति पर कांग्रेसकी कार्य-कारिणीको विचार करना था। इसमें भाग लेनेके लिए नेहरूजीको तुरन्त चीनसे भारतके लिए रवाना होनेका सन्देश भेजा गया। नेहरूजीको बाध्य होकर लौटना पड़ा। वर्तमान चीनी लोक-गणतन्त्रके प्रधान मन्त्री श्री चाओ एन लाई आदिसे मिलनेकी उनकी इच्छा पूर्ण न हो सकी। श्री चाओ एन लाईकी भारत-यात्राके समय उनके सम्मान में आयोजित राजभोजके अवसर पर नेहरूजीने अपनी उस समयकी इच्छाका उल्लेख किया था और यह कहा था कि "मैं उस समय भी आपसे (चाओ एन लाईसे) मिलना चाहता था लेकिन मिल न सका था।" यह इच्छा लगभग पन्द्रह वर्षोंके बाद पूर्णतः बदली हुई परिस्थितियोंमें पूरी हुई।

ऊपरके संक्षिप्त विवरणसे यह स्पष्ट हो जाता है कि नेहरूजी चीनकी ओर आकृष्ट रहे हैं, न कि चीनके दल-विशेषकी ओर। उनकी सहानुभूति चीनी जनताके लिए रही है। इस सहानुभूतिका एक निश्चित लक्ष्य रहा है। भारत और चीनमें होनेवाले ऐतिहासिक उलट-फेरने यह लक्ष्य साफ कर दिया है। अब दोनों देश स्वयं अपने-अपने भाग्यका निर्माण कर रहे हैं। यह स्थिति नेहरूजी की पुरानी उमङ्गोंको उभाड़ रही है। फलतः वह चीन-भारतकी पारस्परिक मैत्रीके बंधनको दृढ़ करते हुए, एशियामें नयी शक्तिको जगाकर, इस भूभागसे साम्राज्यवादको उन्मूलित करनेकी चेष्टामें संलग्न हैं। उनका यह इरादा छिपा नहीं है कि चीन और भारत—इन दो महान् राष्ट्रोंकी मैत्री एशियाके भाग्यको जगायेगी एवं इनका पारस्परिक ऐतिहासिक सम्बन्ध एशियामें भ्रातृभावके विकासमें सहायक होगा। इस महा-प्रयासकी नींव 'पंचशील' आदर्शों पर आधारित होगी।

चीनसे मैत्रीकी तीव्र आकांक्षाके बावजूद नेहरूजी कभी भी अपने आदर्शों और सिद्धान्तोंसे च्युत नहीं हुए। यह विशिष्टता इतिहासमें अपना स्थान अक्षुण्ण बनाये रखेगी। आगेके अध्यायोंमें उपयुक्त स्थल पर इसका उल्लेख किया जायगा। यहाँ पर इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि दोनों राष्ट्र एक-दूसरेके आन्तरिक मामलोंमें हस्तक्षेप न करते हुए और एक-दूसरेकी प्रादेशिक अखण्डताका सम्मान करते हुए, मित्रताको दृढ़से दृढ़तर बनानेके लिए दृढ़ संकल्प हैं।

नया चीन और नेहरूजी

अक्तूबर, सन् १९४९ में नये चीनका—चीनी लोक-गणतन्त्रका अभ्युदय हुआ। च्याङ्गकाई शेककी सत्ता समाप्त हुई और कम्युनिस्ट सत्ता प्रतिष्ठित हुई। चीन-भारत मैत्रीके सन्दर्भमें इस परिवर्तनका कोई प्रभाव नेहरूजी पर नहीं पड़ा। इसके लिए नेहरूजीको तीव्र आलोचना का शिकार भी होना पड़ा। लेकिन यह आलोचना कभी भी तर्क-सङ्गत नहीं रही। जिन्होंने आलोचना की, वे विचार-विशेषके भक्त हैं और चाहते हैं कि सभी लोग उनकी ही भांति सोचें।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध इस कठमुल्लापनकी नीतिसे कभी पनप नहीं सकते। प्रत्येक देशकी स्थिति अलग-अलग होती है। वहांकी परम्पराएँ अलग होती हैं। सोचने और विचार करनेका तरीका अलग होता है। इस बातको लोग भूल जाते हैं। वे यह भी नहीं समझते कि एक देशका दूसरे देशसे सम्बन्ध दोनों देशोंकी जनताके हितोंके पक्षमें होना चाहिये। कोई देश यदि दूसरे देशसे सम्बन्ध स्थापित करता है तो उसे सम्बन्धित देशकी जनताकी ओर देखना चाहिये न कि वहांके गुट या वर्ग-विशेषकी ओर। चीनके प्रति नेहरूजीकी धारणाओंका सम्बन्ध सदा चीनकी जनतासे रहा है। चीन पर जापानके आक्रमणको उन्होंने च्याङ्ग-काई शेक पर जापानका आक्रमण नहीं बल्कि चीनकी जनता पर हमला माना था। यह कोई रहस्यकी बात नहीं है। नेहरूजी स्वयं ही अपनी दृष्टि कई बार स्पष्ट कर चुके हैं। वह पूरी कौमके प्रशंसक रहे हैं और उससे ही प्रभावित रहे हैं। उन्होंने अनेक बार यह स्वीकार किया है कि "चीनी लोगोंकी जीवन-शक्ति मुझे हैरतमें डालती है। मैं इस बातकी कल्पना भी नहीं कर सकता कि कोई कौम, जिसकी नींव इतनी मजबूत हो, मर सकती है।"[१] यह बात तब और भी स्पष्ट हो जाती है जब उन भावनाओंका अध्ययन किया जाता है, भारतके सम्बन्धमें जिनकी अपेक्षा उन्होंने चीनसे की। कमसे कम यह तो आइनेकी तरह साफ है कि वह चीनकी सहानुभूति पूरे भारतकी जनताके लिए समझते रहे हैं।

---

१. नेहरूजी की पुस्तक 'हिन्दुस्तान की कहानी'—पृष्ठ संख्या ५५।

द्वितीय महायुद्धके समय जनरलिसिमो और मैडम च्याङ्गकाई शेकने भारत का दौरा किया था। नेहरूजी पर इसका जो प्रभाव पड़ा उसका उल्लेख उन्होंने इस प्रकार किया था—"सरकारी रवैयेके कारण हिन्दुस्तानकी सरकारकी मर्जीके मुताबिक वे आम जनतासे मिल-जुल नहीं सकते थे। लेकिन इस संकटके समय (भारतीय स्वातन्त्र्य युद्ध) हिन्दुस्तानमें उनकी मौजूदगी और हिन्दुस्तानकी आजादीके लिए उनकी जाहिरा हमदर्दीने हिन्दुस्तानको राष्ट्रीय आवरणके बाहर आनेमें मदद दी और इस वक्त जिन अन्तर्राष्ट्रीय सवालों पर दाँव लग रहा था, उनकी जानकारी बढ़ी। हिन्दुस्तान और चीनको एक करनेवाले धागे और मजबूत हुए।"[1] नेहरूजीने यह भाव भी प्रकट किया था कि "चीनमें यह बात जाहिर थी कि हमारे किसी खास कामकी चाहे जो प्रतिक्रिया हो, उनकी हमदर्दी पूरी तरह हिन्दुस्तानकी आजादीकी तरफ थी। इस हमदर्दीका आधार इतिहास था। इससे भी ज्यादा गहरी बात यह थी कि जब तक हिन्दुस्तान आजाद न होगा, तब तक चीनकी आजादीके लिए भी खतरा बना रहेगा।"[2]

यह बुनियादी बात है। इसकी उपेक्षा करने पर चीनके प्रति नेहरूजीकी धारणाएँ और उनकी नीति सही अर्थमें कभी भी समझमें नहीं आ सकती। इस अज्ञानका परिचय लोगोंने न दिया हो, ऐसी बात नहीं है। यह संयोगकी ही बात थी कि चीनमें कम्युनिस्ट शासनकी स्थापनाकी घोषणा के एक सप्ताहके बाद ही नेहरूजी अमेरिकाके लिए रवाना हुए। कम्युनिस्ट चीन और अमेरिकाका जैसा कटु सम्बन्ध रहा है, उसे देखते हुए नेहरूजी की अमेरिका-यात्राके साथ 'संयोग' शब्दका प्रयोग किया गया है। यह स्वाभाविक ही था कि इस अवसर पर अमेरिका में चीनके सम्बन्धमें नेहरूजीके विचारोंको जाननेकी उत्सुकता प्रकट की जाती। इसके साथ यदि अमेरिकाका अन्तर्राष्ट्रीय स्वार्थ जुड़ा हुआ था, तो स्वतन्त्र विचारक के रूपमें नेहरूजीके चरित्रकी समीक्षाका प्रश्न भी उससे अलग नहीं था। एक ओर सारे पश्चिमी जगत्की आँखें नेहरूजीकी ओर लगी हुई थीं और दूसरी ओर एशियाके बहुत बड़े भूभाग और उपनिवेशोंकी पीड़ित और दलित जनता उनकी ओर देख रही थी। इसका कारण भी स्पष्ट था। चीनमें कम्युनिस्ट शासनकी

१. नेहरूजी की पुस्तक 'हिन्दुस्तान की कहानी'—पृष्ठ संख्या ५६४।
२. नेहरूजी की पुस्तक 'हिन्दुस्तानी की कहानी'—पृष्ठ संख्या ६२०।

स्थापनाके दूसरे ही दिन (२ अक्तूबर, १९४९) मास्को रेडियोसे यह घोषणा की जा चुकी थी कि "सोवियत सरकार तथा चीनकी कम्युनिस्ट सरकारसे दूत-सम्बन्ध स्थापित हो चुका है और सोवियत सरकारने कोमिन्तांग चीनकी राष्ट्रीय सरकारसे सम्बन्ध तोड़ लिया ।" चीनी लोक गणतन्त्रके अध्यक्ष श्री माओत्सेतुंग दुनियाके सभी देशोंके सामने यह पैगाम रख चुके थे कि "नयी कम्युनिस्ट सरकार ऐसे किसी भी देशके साथ कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए तैयार है जो समानता, पारस्परिक लाभ, प्रादेशिक अखण्डता और सर्वतन्त्र स्वतन्त्र देशकी सत्ता की इज्जतके सिद्धान्तोंको स्वीकार करता हो ।"[1]

जिस समय नेहरूजी अमेरिका गये थे, उस समय भारतको स्वतंत्रता अर्जित किये दो वर्ष बीत चुके थे । उस समय भी वे भारतके प्रधान मंत्री और परराष्ट्र-मंत्री थे ।

"महान् एशियाई राष्ट्रके अभ्युदय के क्रमकी ओर दुनियाकी आंखें लगी थीं । विश्वके राष्ट्र यह जानना चाहते थे कि भारत कम्युनिस्ट चीनकी सरकार को मान्यता प्रदान करेगा या नहीं ? जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अमेरिकामें इसके प्रति गहरी उत्सुकता थी । इसका कारण यह था कि कम्युनिस्ट सरकार को सत्तारूढ़ न होने देनेके लिए अमेरिकाने च्याग-काई शेककी राष्ट्रवादी सरकार को अरबों डालर और शस्त्रास्त्र दिये थे । इसके बावजूद चीनकी राष्ट्रवादी सरकार और उसके नेता च्यागकाई शेक चीनके बाहर फारमोसामें खदेड़ दिये गये । एक ओर यह स्थिति थी, दूसरी ओर भारतको अमेरिकाकी सहायताकी आवश्यकता थी । भारतमें व्यापक रूपमें अन्नाभाव था । भारत, अमेरिकासे आर्थिक सहायता तो चाहता ही था, साथ ही गल्ला भी चाहता था । चीनके प्रति नेहरूजी की नीति इस कठिन कसौटी पर कसी जानेवाली थी । इस कठिन परिस्थितिमें भी चीनके प्रति नेहरूजीकी दृष्टिमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ । एशियाके उत्थानके लिए चीनके अभ्युदयको जिस प्रकार वह पहले अत्यावश्यक समझते थे, उस प्रकार ही तब भी समझते रहे । चीनको मान्यता देनेके सम्बन्धमें उन्होंने साफ-साफ यह घोषित किया था कि "एशियामें जो क्रान्तिकारी घटनाएं घट रही है,

1. राजकीय कार्यों पर श्री चाओ-एन-लाई की रिपोर्ट (अंग्रेजी), भारत के चीनी दूतावास द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ सं० ४० ।

भारत उनकी उपेक्षा नहीं कर सकता।" जिस समय उन्होंने यह घोषणा की थी, उस समय उनका मस्तिष्क आइनेकी तरह साफ था और उसमें उनके हृदयकी यह आवाज साफ-साफ नजर आ रही थी कि "भारत एशियाई उपनिवेशोंको परतन्त्रता के बन्धनसे उन्मुक्त होकर राष्ट्रीयताके विशुद्ध वातावरणमें विकसित होते देखना चाहता है। वह इन देशोंकी जनताका शोषण और उत्पीड़न बरदाश्त नहीं कर सकता। हिन्दचीन, हिन्दएशिया और अन्य एशियाई उपनिवेशोंकी जनतामें भारतकी विशेष दिलचस्पी है।"*

जिसके हृदयमें एशियाके अभ्युदयकी ऐसी गहरी लालसा रही हो, उसमें यह आशा केन्द्रित होनी ही चाहिये थी कि वह एशियामें जन्म लेनेवाली नयी स्वतन्त्र शक्तिकी ओर मैत्रीका हाथ बढ़ायेगा। फिर भी सर्वदा कूटनीति पर ही विश्वास करने वालोंकी समझमें यह बात नहीं आयी। अमेरिकाकी तो बात दूर रही, भारतमें भी ऐसे लोगोंकी कमी नहीं थी जो नेहरूजी पर 'अमेरिकाके हाथ बिकने'का इलजाम खुल्लम-खुल्ला लगा रहे थे। यह इलजाम लगाया था उन लोगोंने जो स्वयं मनसा, वाचा, कर्मणा 'राजनीतिक रूढ़िवाद'के हाथों बिके हुए थे।

नेहरूजीकी अमेरिका-यात्राके दौरानमें उनसे कई बार ऐसे प्रश्न पूछे गये थे जिनका सम्बन्ध चीनको मान्यता देनेके प्रश्नसे था। नेहरूजीका उत्तर भी प्राय: मिलता-जुलता था। उदाहरणके लिए यहाँ दो प्रश्नोत्तर प्रस्तुत किये जा रहे हैं। इनमें पहलेका सम्बन्ध सानफ्रांसिस्को प्रेस क्लबमें आयोजित प्रेस-कांफ्रेंस से और दूसरेका सम्बन्ध अमेरिकासे लन्दनके लिए रवाना होनेसे दो घंटे पूर्व न्यूयार्क के वाल्डोर्फ आस्टोरिया होटलमें पत्र-प्रतिनिधियोंसे हुई वार्तासे है। प्रश्नोत्तर क्रमश: इस प्रकार हैं: (१) **प्रश्न**—"चीनमें कम्युनिस्ट शक्तिके अभ्युदयसे क्या भारत आकुल है?" **उत्तर**—"किसी बातसे आकुल होना, काफी अर्सा हुआ मैंने छोड़ दिया है।" **प्रश्न**—"क्या भारत, चीनकी सरकारको मान्यता देनेवाला है?" **उत्तर**—"चीनमें घटनेवाली घटनाओंकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।"

प्रतिकूल परिस्थितियाँ नेहरूजीको प्रभावित न कर सकीं। चीनको मान्यता देनेके प्रश्न पर उन्होंने न्यायकी दृष्टिसे और एशियाके हित पर ध्यान देते हुए विचार किया। फलस्वरूप ३० दिसम्बर, १९४९ को भारतने चीनकी कम्युनिस्ट

* लेखक की पुस्तक 'अमेरिका में नेहरू—पृष्ठ सं० २४

सरकार को मान्यता प्रदान करनेकी घोषणा कर दी। २० मई को पीकिंगमें भारत के राजदूतने अपना प्रमाण-पत्र पेश किया। १५ सितम्बरको चीनका राजदूत भारतमें पहुँचा और २० सितम्बरको उसने भी अपना प्रमाण-पत्र पेश किया।'* इसकी व्यापक प्रतिक्रिया हुई। कुछ ही समयके बाद ब्रिटेन आदिने भी चीनी लोक-गणतंत्रकी सरकारको मान्यता प्रदान करनेकी घोषणा कर दी। बड़े राष्ट्रों में केवल संयुक्तराष्ट्र अमेरिकाने ही चीन सरकारको मान्यता प्रदान नहीं की। चीनके प्रमुख भूभागसे पलायित होकर फारमोसा द्वीपमें शरण लेनेवाली च्यांगकाई शेककी सरकारके प्रति अमेरिकाकी जो नीति है, उसे देखते हुए कम्युनिस्ट चीन को मान्यता न प्रदान करनेका उसका कार्य स्वाभाविक ही है। उसने स्पष्टतः च्यांगकाई शेक पक्षसे अपना गठबन्धन कर रखा है। फलतः उसकी पराजय उसे अच्छी न लगी। उसने अन्तर्राष्ट्रीय मान्यताओंको तिलांजलि दे दी, लेकिन यह बात न छिपायी। वास्तविकताको छिपानेकी उसने कोशिश की भी तो बहुत देरके बाद। तबतक उसका कम्युनिस्ट-द्रोह बिलकुल साफ हो चुका था।

सानफ्रांसिस्कोके कामनवेल्थ क्लब ऑव कैलिफोर्नियामें अपने भाषणमें अमेरिकाके तत्कालीन परराष्ट्र-मंत्री श्री डीन अचेसनने चीनके सम्बन्धमें जो उद्गार प्रकट किये थे, वे अमेरिकाकी वास्तविक मनोभावनाको व्यक्त करनेवाले थे। उन्होंने कहा था—"चीनमें वहांकी जनताकी, स्वतंत्रताकी दृढ़ और पुरानी अभिलाषाएँ दूसरे छोर पर पहुँच गयी हैं। सन् १९१२ में मंचू राजवंशके शासन की समाप्तिके बादसे चीनके लोग प्रभुसत्तामें हस्तक्षेपकी स्थितिसे मुक्त होने और अपने जीवनकी उन्नति करनेके लिए प्रयत्नशील हैं। वर्षों तक उन्होंने अकल्पित साहस, सहिष्णुता और धैर्यके साथ प्राकृतिक विपत्तियों, आन्तरिक मतभेद और कलह तथा विदेशी शत्रुओंके विरुद्ध संघर्ष किया और इसे तब तक जारी रखा जब तक युद्धकी समाप्तिके बाद उन्हें अपनी आशाएँ फलवती होती दिखाई न दीं। इसके बाद जन-आकांक्षाओंके अनुकूल आचरण करनेमें अपनी असफलता, उदासीनता और अन्धेपनके कारण चीन सरकारने जनताका विश्वास और सहयोग खो दिया। चीनकी राष्ट्रवादी सरकार शस्त्रास्त्रोंकी ताकतसे नहीं उलटी गयी। वह जन-सहयोगके अभाव तथा अपनी स्वाभाविक दुर्बलताके कारण समाप्त हुई। कम्युनिस्ट

* परराष्ट्र मन्त्रालय का वार्षिक प्रतिवेदन, १९५०-५१, पृष्ठ सं० ६



नेहरू और माओ का भव्य मिलन



चीन के बौद्ध नेताओं के साथ पं० नेहरू

उसकी गलतियोंके कारण विजयी हुए, अपने सिद्धान्तोंके कारण नहीं। दुर्बलता को खोजकर उसका अनुचित लाभ उठानेकी भलीभाँति विदित कम्युनिस्ट तरकीब से उन्होंने काम लिया और दुर्बलताको पा जाने पर उसका खूब अनुचित लाभ उठाया। अपने अंधेपन, अपनी अयोग्यताओं और प्रभावहीनता एवं कम्युनिस्टों की चालबाजियोंके कारण आज चीनकी सरकारकी प्रभुता केवल फारमोसा और हैनान द्वीपों तक ही सीमित है। × × × जनताकी अभिलाषाओंकी अभिव्यक्तिके रूपमें लगभग आधी शताब्दी पूर्व जो क्रान्तिकारी आन्दोलन चीनमें प्रारम्भ हुआ था, उस पर सम्प्रति कम्युनिस्टोंका कब्जा हो गया है। राजसत्ता पर उनके अधिकारके कारण क्रान्तिका वास्तविक मकसद उलटा हो गया है। जब कि पड़ोसी देश अंततः सच्ची राष्ट्रीय स्वतंत्रता अर्जित कर रहे हैं—इनमेंसे कुछ अपने इतिहासमें पहली बार—चीन, जिसका इतिहास लम्बा और शानदार है, सोवियतका मुहताज हो रहा है।"

अमेरिकाके तत्कालीन परराष्ट्र-मन्त्री श्री अचेसनने कहीं भी उन कारणोंका भलीभाँति उल्लेख नहीं किया जिनसे चीनको मान्यता न देनेकी स्थितिका स्पष्टीकरण होता। वास्तवमें ऐसा कोई कारण था ही नहीं। साधारणतः यह माना जाता है कि जो सरकार स्वतन्त्रतापूर्वक दूसरे देशोंसे सन्धि और समझौते कर सकती है, विदेशोंमें अपने दूतावास स्थापित कर सकती है, बाह्य हस्तक्षेपके बिना अपने देशकी शासन-व्यवस्थाका निर्द्धारण कर सकती है और अन्य राष्ट्रीय तथा अन्तराष्ट्रीय मामलोंमें केवल अपने ही देशकी जनताके प्रति उत्तरदायी होती है, वह सरकार स्वतन्त्र होती है और उसका देश स्वतन्त्र देश कहा जाता है। इस प्रकार के स्वतन्त्र देशसे कूटनीतिक सम्बन्ध कायम न करनेकी स्थिति तभी उत्पन्न होती है, जब उसका कोई आचरण अन्तर्राष्ट्रीय परम्पराओंके प्रतिकूल रहा हो। अमेरिकाके सत्ताधिकारियोंने इसकी उपेक्षा की। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, नेहरूजीने इस पर न्याय और अन्तर्राष्ट्रीय परम्पराओं एवं मान्यताओंकी दृष्टिसे ही विचार किया। उन्होंने चीनको अन्तर्राष्ट्रीय विधानका पात्र माना; क्योंकि उसकी दशाएँ इसके अनुकूल थीं। अन्तर्राष्ट्रीय विधानके प्रख्यात लेखक श्री हालने अपनी पुस्तक 'इण्टरनैशनल ला' (अन्तर्राष्ट्रीय कानून) के दूसरे अध्यायमें लिखा है कि "यह साधारण तथ्य है कि यदि कोई समुदाय समष्टि रूपमें, निर्विवाद

और एकांत रूपमें अपने देशकी जनता और वहाँकी स्थितियों पर नियन्त्रण रखता है, यदि वह परराष्ट्र सम्बन्ध किसी अन्य समुदायकी इच्छाके अनुकूल निर्धारित नहीं करता, तथा अन्तर्राष्ट्रीय विधानको मानता है और उसके अस्तित्वके स्थायित्व की आशा की जा सकती है तो वह अन्तर्राष्ट्रीय विधानका पात्र है।" इस कसौटी पर चीन खरा उतरता था। इतिहासके इस क्रमकी वास्तविकताको नेहरूजीने स्वीकार किया।

यह मान लेने पर कि चीन पर कम्युनिस्ट सरकारकी प्रभुता स्थापित हो गयी है, यह मानना स्वाभाविक ही था कि अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओंमें चीनको उसका उचित स्थान प्राप्त हो। उन्होंने यह स्वीकार किया और अन्य राष्ट्रोंसे भी इसे स्वीकार करनेका आग्रह किया। बहुतसे राष्ट्रों पर नेहरूजीकी नीतिके औचित्य का प्रभाव जरूर पड़ा लेकिन अमेरिका पर इसका तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। उसने कम्युनिस्ट चीनकी सरकारको मान्यता प्रदान नहीं की। उसकी गुटबन्दीके कारण ही चीन संयुक्त राष्ट्रसंघमें अपना न्यायपूर्ण अधिकार प्राप्त नहीं कर सका है। संयुक्त राष्ट्रसंघके जिन पाँच बड़े राष्ट्रोंको संघकी सुरक्षा समितिका स्थायी सदस्य माना गया है और जिन्हें निषेधाधिकार प्राप्त है, उनमें चीन भी है। लेकिन यह प्रतिनिधित्व प्राप्त है चीनके साठ करोड़ निवासियों पर शासन करनेवाली तथा परराष्ट्रोंसे स्वतन्त्रतापूर्वक अपना सम्बन्ध कायम करनेवाली चीनकी कम्युनिस्ट सरकारको नहीं, बल्कि भगोड़े च्याङ्गकाई शेककी सरकारको जो अमेरिका की छत्रछायामें फारमोसाके कुछ लाख लोगों पर हुकूमत कर रही है!

इस अस्वाभाविक स्थितिका अन्त करने और संयुक्त राष्ट्रसंघमें चीनको उसका स्थान दिलानेकी ओर भी नेहरूजी ने ध्यान दिया। इस ओरसे भी वे उदासीन नहीं रहे। राष्ट्रसंघ द्वारा चीनको मान्यता प्रदान न किये जानेके कार्य की कड़ीसे कड़ी आलोचना करनेमें वह कभी नहीं चूकते। इस सम्बन्धमें उनका यह मत है कि "सार्वभौमिकताके जिस सिद्धान्त को लेकर संयुक्त राष्ट्रसंघका अभ्युदय हुआ, उससे वह अलग हट गया है। उसने चीन ऐसे महान् राष्ट्रको मान्यता नहीं प्रदान की। चीनकी वर्तमान सरकारको हम पसन्द करें या नापसन्द करें, हम चीनकी क्रान्तिसे सहमति प्रकट करें या असहमति प्रकट करें, इन प्रश्नोंका उपर्युक्त तथ्यसे कोई सम्बन्ध नहीं है। सार्वभौमिकताके आधारभूत सिद्धान्तका

संयुक्त राष्ट्रसंघने परित्याग कर दिया है। यह उसी प्रवृत्तिका परिचायक है जिससे 'लीग आफ नेशंस'का पतन हुआ।...स्पष्टतः दृढ़ और शक्तिशाली राष्ट्र को संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा मान्यता न प्रदान किये जानेके कारण नयी समस्याएँ उत्पन्न हो गयी हैं।"

संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा चीनी लोक-गणतन्त्रको मान्यता न प्रदान किये जानेका सबसे प्रबल कारण अमेरिकाका अवरोध रहा है। इसे जिन तर्कों पर आधारित करनेकी कोशिश अमेरिकाके राजनीतिज्ञ करते रहे हैं, उनसे चीनी लोक-गणतन्त्र के प्रति नेहरूजी की धारणाएँ असंगत सिद्ध नहीं हुईं। सच तो यह है कि समय-समय पर भारतकी ओरसे चीनके पक्षमें जो तर्क उपस्थित किये जाते रहे हैं, उनका सही-सही उत्तर न तो कभी अमेरिकाने दिया, न उसके मतके समर्थक अन्य राष्ट्रों ने। २९ मार्च, सन् १९५४ को ओवरसीज क्लब (न्यूयार्क) में अमेरिकाके परराष्ट्र-मन्त्री जान फास्टर डलेसने जो भाषण किया था, उसमें चीनके सम्बन्धमें अमेरिकाकी नीतिका उल्लेख काफी विस्तारसे किया गया था। यहाँ सम्बन्धित अंशको उद्धरित करना अप्रासङ्गिक न होगा। फास्टर डलेसने कहा था कि "अमेरिका चीनकी साम्यवादी सरकारको स्वीकार नहीं करता, यह सर्वविदित है। लेकिन प्रतीत होता है कि इसका कारण भलीभाँति विदित नहीं है। कुछ लोग यह सोचते हैं कि इसके लिए कोई कारण नहीं है और हम केवल भावना-विशेष से प्रेरित होकर ही ऐसा कर रहे हैं। अमेरिकाकी सरकार यह विश्वास करती है कि उसका रुख अत्यधिक विवेकपूर्ण है।

"पहले मैं याद दिलाना चाहता हूँ कि कूटनीतिक मान्यता देनेका कार्य स्वेच्छा से किया जानेवाला कार्य है। एक देशको यह अधिकार नहीं है कि वह किसी देशसे कूटनीतिक मान्यता देनेकी माँग करे। बहुधा यह लाभदायक होता है कि उन लोगोंके बीच कूटनीतिक सम्बन्ध हो जो वस्तुतः शासन-सूत्रका संचालन करते हैं और यह मानी हुई बात है कि मान्यताका अर्थ अनिवार्यतः नैतिक मान्यता प्रदान करना नहीं होता।

"राष्ट्रपति मनरोने कांग्रेसको प्रेषित अपने प्रसिद्ध सन्देशमें जारशाही रूस की निरंकुश और साम्राज्यवादी शासन-व्यवस्थाकी निन्दा की थी लेकिन उन्होंने कहा था—'फिर भी हमारी यह नीति रहेगी कि हम व्यवहारतः उस सरकारको वहाँकी कानून-संगत सरकार मानें।' वस्तुतः यही अमेरिकाकी सामान्य नीति

रही है और मेरा विश्वास है कि यह विवेकपूर्ण सामान्य नीति है। लेकिन फिर भी जहाँ कहीं यह हमारे हितोंसे मेल नहीं खाती, हम इसमें परिवर्तन करनेके लिए पूर्णतः स्वतन्त्र हैं।"

"साम्यवादी चीनके सम्बन्धमें हम इस तथ्यकी उपेक्षा नहीं कर सकते कि चीनी साम्यवादियोंकी सरकार बराबर और उग्र रूपमें अमेरिकाका विरोध करती रही है।"

इस भाषणमें ही संयुक्त राष्ट्र-संघमें चीनके प्रवेश पर भी श्री डलेसने अमेरिका की अपनी नीति स्पष्ट की थी। आपका कहना था कि "संयुक्त राष्ट्र संघके घोषणापत्रके अनुसार सदस्यताका अधिकार 'शान्तिप्रिय' राष्ट्रों तक सीमित प्रतीत होता है। इसलिये यह कहना प्रासंगिक ही प्रतीत होता है कि चीनकी साम्यवादी सरकारने सन् १९५० के अन्तिम भागमें आक्रमणात्मक काररवाई की। उसकी सेनाओंने कोरिया पर आक्रमण किया तथा संयुक्त राष्ट्र-संघकी कमानके विरुद्ध लड़ाई लड़ी।"[१]

स्पष्ट है कि जान फास्टर डलेसके कथनमें उन बुनियादी बातोंका उल्लेख तक नहीं है जिनकी कसौटी बनाकर नेहरूजी ने चीनको मान्यता प्रदान की अपनी धारणा कसी और वह खरी सिद्ध की।

संयुक्त राष्ट्रसंघमें चीनी लोक-गणतन्त्रके प्रवेशके प्रश्नको ही ले लिया जाय। इस सम्बन्धमें नेहरूजीके जो विचार हैं, उनका उल्लेख श्री डलेसके उपर्युक्त कथन से पूर्व किया जा चुका है। उनपर ध्यान देते हुए अमेरिकाके पर-राष्ट्र मंत्रीके कथन पर विचार करने पर उसकी निस्सारता सहज ही स्पष्ट हो जाती है।

नेहरूजी ने इस प्रश्न पर राष्ट्र-विशेषके साथ चीनके राजनीतिक सम्बन्धकी पृष्ठ-भूमिमें नहीं, बल्कि संयुक्त राष्ट्रसंघके बुनियादी सिद्धान्तोंके आधार पर विचार किया है। उनका तर्क यह है कि "मूल प्रश्न चीनको संयुक्त राष्ट्रसंघका सदस्य बनानेका नहीं है। चीन संयुक्त राष्ट्रसंघकी नींव डालनेवाले राष्ट्रोंमें से एक है। प्रश्न तो यह है कि चीनका प्रतिनिधित्व कौन करता है? यह तथ्य

1. United States Policy on Indo-China and Chinese Communist Regime—PP. 5–6, Published by United States Information Service, New Delhi.

भलीभाँति महसूस नहीं किया जाता। किस नये राष्ट्रको संयुक्त राष्ट्रसंघका सदस्य बनाया जाय, वस्तुतः सुरक्षा-परिषदके लिए यह विचार ठीक नहीं है। चीन नया देश नहीं है। यह संयुक्त राष्ट्रसंघकी नींव डालनेवाला राष्ट्र है।... यह देखकर मुझे हैरत और ताज्जुब होता है कि इस सीधे प्रश्नको घुमा-फिरा कर कितना तोड़ा ...... बनाया गया। सुदूर-पूर्व या दक्षिण-पूर्व एशियाकी समस्याओंका तब तक कोई निपटारा न होगा, जबतक चीनी लोक-गणतंत्रसे सम्बन्धित इस महान् तथ्यको स्वीकार नहीं कर लिया जाता। मेरा कहना है कि दक्षिण-पूर्व एशिया और सुदूर-पूर्वमें शान्तिको सुनिश्चित करनेवाले कारणों में एक कारण चीनको मान्यता प्रदान करना तथा संयुक्त राष्ट्रसंघमें उसको भी स्थान देना है।

"यदि चीन संयुक्त राष्ट्रसंघमें आ जाता है तो वहाँ और अन्य जगह प्रत्यक्षतः उसका सामना करनेकी स्थिति उत्पन्न हो जायगी। इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्रसंघमें रहने पर उसको कुछ जिम्मेदारियोंका भार भी वहन करना होगा। आजकी स्थिति अजीबो-गरीब है। कभी-कभी संयुक्त राष्ट्रसंघ चीनके सम्बन्ध में कोई प्रस्ताव स्वीकार करता है और इस भावसे उसे कुछ करनेका आदेश देता है। चीनकी ओरसे उत्तर मिलता है—'संयुक्त राष्ट्रसंघ हमारी सत्ता स्वीकार नहीं करता; चीनको वहाँ प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है; हम उसके अंग नहीं हैं; फिर उसकी हिदायतें हम स्वीकार कैसे कर सकते हैं?' यह उत्तर समझमें आने के योग्य है।"[1]

यह बताया जा चुका है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा चीनको मान्यता प्राप्त न होनेका सबसे प्रबल और शायद एकमात्र कारण अमेरिकाका विरोध ही है। जिन कारणोंके आधार पर अमेरिका चीनी लोक-गणतंत्रका विरोध करता रहा है, वे वास्तविक नहीं हैं। नेहरूजीने यह भी बहुत अच्छे ढंगसे और मैत्रीके इच्छुक राजनीतिज्ञकी भाँति सिद्ध किया है। १८ मई, सन् १९५४ को भारतकी राज्य-सभामें परराष्ट्रनीति-विषयक बहसको प्रारम्भ करते हुए उन्होंने जो भाषण किया था, उसमें उन्होंने अमेरिकाके परराष्ट्र-मंत्री श्री डलेसकी पुस्तक 'वार आर पीस' का एक अंश उद्धरित किया था। यह पुस्तक श्री डलेसने आइजनहावर प्रशासनमें

१. भारत की लोक-सभा में परराष्ट्र नीति पर भाषण—२९ सितम्बर सन् १९५४।

परराष्ट्र मन्त्री-पदका भार ग्रहण करनेसे पूर्व लिखी थी। नेहरूजी द्वारा उद्धरित अंशका अनूदित रूप इस प्रकार है---"मैं अब यह विश्वास करता हूँ कि वास्तवमें दुनियाका जो रूप है, उसी रूपमें संयुक्त राष्ट्रसंघकी सभा (असेम्बली) यदि उसका प्रतिनिधित्व करे और सूक्ष्मतासे 'भले' और 'बुरे' राष्ट्रोंमें विभेद करनेकी कोशिश न करे तो शान्तिकी स्थापनाके कार्यका निर्वाह संयुक्त राष्ट्रसंघ सबसे अधिक अच्छी तरह कर सकता है।

"कुछ वर्तमान सदस्य-राष्ट्रोंकी सरकारें जनताका प्रतिनिधित्व नहीं करतीं। लेकिन वास्तवमें यदि वे 'शासन' करती हैं, तो उनकी शक्तिका प्रतिनिधित्व ऐसी संस्थामें होना ही चाहिये जिसका उद्देश्य विश्वकी वास्तविकताकी प्रतिच्छाया प्रस्तुत करना है। यदि बिना किसी गम्भीर आन्तरिक विरोधके चीनकी कम्यु-निस्ट सरकार चीन पर शासन करनेकी योग्यता दर्शाती है तो वह भी संयुक्त राष्ट्र-संघमें शामिल की जानी चाहिये।"

श्री डलेसके इस कथन और चीनको संयुक्त राष्ट्र-संघमें शामिल न होने देनेके पक्षमें उनके द्वारा उपस्थित किये जानेवाले तर्कोंमें, जमीन आसमानका अन्तर है। परराष्ट्र मन्त्रीका पद ग्रहण करनेसे पूर्व उन्होंने वास्तविकताकी समीचीन विवेचना की थी और तथ्यको स्वीकार किया था किन्तु बादमें अवास्तविकताको ही वास्तविकता सिद्ध करनेकी कोशिश उन्होंने बार-बार की। नेहरूजी इसे चीनके प्रति अन्याय समझते हैं। अपनी धारणाके औचित्यको सिद्ध करनेके लिए उन्होंने जिन तर्कोंका सहारा लिया, मूलतः उनका रूप श्री डलेसके उस कथनसे भिन्न नहीं है जो उनकी पुस्तक 'वार ऍण्ड पीस' से उद्धरित किया गया है। भारत की राज्य-सभामें १८ मई, सन् १९५४ को नेहरूजी ने जो भाषण किया था, उसमें उनके तर्कोंका, जो श्री डलेसकी पुस्तकसे उद्धरित अंशसे मिलते-जुलते हैं, रूप नितान्त स्पष्ट है। नेहरूजीने कहा था---"आरम्भसे ही हम इस बातके लिए इच्छुक रहे हैं कि संयुक्त राष्ट्रसंघमें चीनी लोक-गणतन्त्रको चीनका प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। इस प्रश्नका इससे कोई सम्बन्ध नहीं है कि हम इसको पसन्द करते हैं, या नापसन्द करते हैं। लेकिन हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि संयुक्त राष्ट्र-संघको वास्तविक अर्थ में विश्वकी प्रतिनिधि-संस्था होना है तो उसे मजबूतीके साथ शासन करनेवाली प्रत्येक सरकारको अपने में शामिल करना ही होगा। यदि ऐसा नहीं होता तो वास्तविकताकी दृष्टिसे वह प्रतिनिधि-संस्था नहीं रह जाती।

........इस समय लन्दनमें निःशस्त्रीकरण सम्मेलन या उसकी एक समिति की बैठक हो रही है। हम यह मान लें—यद्यपि यह माननेका अर्थ बहुत अधिक आशावादी होना होगा—कि समितिमें प्रतिनिधित्व प्राप्त देशोंके बीच निःशस्त्रीकरणके पक्षमें कोई समझौता हो जाता है और संयुक्त राष्ट्रसंघ उससे सहमति प्रकट करता है। जिन देशोंको संयुक्त राष्ट्रसंघमें प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है, वे इससे सहमत क्यों हों? कुछ छोटे देश इससे सहमत हों या असहमत हों तो कोई खास प्रभाव नहीं पड़ता लेकिन यदि महान् देश चीन इस प्रकारके समझौतेसे बाहर रह जाता है तो इससे स्थितिमें बहुत बड़ा अन्तर आ जायगा—अभी ही नहीं, किन्तु बादमें भी। ....प्रत्येक दृष्टिसे मुझे यह असाधारण बात लगती है कि चीनकी वर्तमान सरकारकी उपेक्षाकी जाय, उसे संयुक्त राष्ट्र-संघमें शामिल न किया जाय या इस प्रकारका और कोई कार्य किया जाय। चूंकि मैं यह समझता हूँ कि इस तथ्यके परिणामस्वरूप गत चार वर्षोंमें विश्वमें अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हुईं, इसलिए यह कहता हूँ। किसीके लिए भी संयुक्त राष्ट्र-संघमें यह कहना नितान्त निरर्थक है कि फारमोसाका प्रतिनिधि चीनका प्रतिनिधि है। उसका चीनसे कोई सम्बन्ध नहीं है, चीनमें उसे कोई अधिकार नहीं है--उसे चीनका प्रतिनिधि बताना स्वयंको धोखा देना है और ऐसे मामलोंमें स्वयंको धोखा देनेका परिणाम बहुत खतरनाक होता है।"

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें चीनकी मान्यताके सम्बन्धमें यद्यपि नेहरूजीका दृष्टिकोण चीनी लोक-गणराज्यकी स्थापनाके बादसे ही बराबर एक-सा ही रहा है तथापि पहले चीन, भारतकी ओरसे कुछ संशक बना रहा। कोरिया-युद्धके बन्दियोंकी अदला-बदलीके सम्बन्धमें सम्बन्धित देशोंमें हुए समझौतेके अनुसार तटस्थ-राष्ट्र बंदी-प्रत्यर्पण आयोगके अध्यक्ष-पद पर भारतकी प्रतिष्ठा और भारत द्वारा निष्पक्षताके साथ अपने दायित्वका सफल निर्वाह, भारतके प्रति चीनकी शंकाको काफी हद तक दूर करनेमें सफल हुआ। इसके बाद चीनी लोक-गणतन्त्र और और सर्वतन्त्र स्वतन्त्र गणराज्य भारत प्रत्यक्षतः एक-दूसरेके कुछ निकट आये। निश्चय ही यह पं० जवाहरलाल नेहरूकी नीतिका ही परिणाम है।

कोरिया का प्रश्न

कोरियाई युद्धको समाप्त करनेके निमित्त किये जानेवाले अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास के दौरानमें चीनी लोक-गणराज्य और भारत प्रथम बार प्रत्यक्षत: एक-दूसरेके निकट आये। इतिहास इस बातका साक्षी है कि भारतको निकटसे देखनेके बाद उसके सम्बन्धमें चीनको अपना दृष्टिकोण बदलना पड़ा। दक्षिणी कोरिया और उत्तरी कोरियाकी सेनाओंके बीच २५ जून, सन् १९५० को युद्ध प्रारम्भ हुआ। तबसे लेकर सन् १९५२ तक चीन और उसके प्रबल समर्थक रूस द्वारा भारतपर बराबर यह दोषारोप किया जाता रहा कि वह पश्चिमी देशोंके गुटमें शामिल है और उनके हाथकी कठपुतली है। किन्तु वस्तुस्थिति यह रही कि भारतकी पर-राष्ट्र-नीतिके संचालक पण्डित जवाहरलाल नेहरूने कोरियाके युद्धसे सम्बन्धित प्रत्येक कदम उन बुनियादी सिद्धान्तोंके आधारपर ही उठाया जिनके आधारपर उन्होंने चीनी लोक-गणतन्त्रको मान्यता प्रदानकी और संयुक्त राष्ट्रसंघसे उसकी जोरदार वकालत की। सन् १९५२ के बाद भारतको निकटसे देखने का अवसर जब चीनको मिला तो उसने यह स्वीकार किया कि भारत और उसके प्रधान मन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू वास्तवमें शान्तिको कायम करना चाहते हैं और उनकी तटस्थतापर विश्वास किया जा सकता है। संयुक्त राष्ट्र संघीय कमान और उत्तरी कोरियाकी कमानके बीच हुए समझौतेके फलस्वरूप कायम बंदी प्रत्यर्पण आयोगके अध्यक्ष-पदपर भारतकी प्रतिष्ठासे यह स्पष्ट है। इस पदको ग्रहण करनेके बाद भारतने अपने कर्तव्यका निर्वाह जिस ईमानदारीसे किया, उसके कारण चीन, भारतके और निकट आ गया और दोनोंके बीच उस मैत्रीका सूत्रपात हुआ जो सन् १९५४ में तिब्बतके सम्बन्धमें हुई सन्धि के रूपमें परिपक्व हुई।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है दक्षिणी और उत्तरी कोरियाकी सेनाओंके बीच युद्ध २५ जून, सन् १९५०को आरम्भ हुआ था। कोरिया-स्थित संयुक्तराष्ट्र संघ आयोगने, जिसमें भारतके अतिरिक्त अन्य छः राष्ट्रोंके प्रतिनिधि भी शामिल थे, युद्ध आरम्भ करनेका दोषारोप उत्तरी कोरिया पर किया था। इसी दिन अर्थात २५ जून, सन् १९५० को संयुक्त राष्ट्रसंघकी सुरक्षा परिषदकी बैठक हुई थी। जिसमें कोरिया-स्थित संयुक्त राष्ट्र-संघ आयोगके मतकी पुष्टि करते हुए उत्तर कोरियापर शान्ति भङ्ग करनेका अभियोग लगाया गया और उत्तरी कोरिया से युद्धको बन्द करने और अपनी सेनाको ३८वीं अक्षांश रेखाके उत्तरी भागमें वापस बुला लेनेको कहा गया। उत्तरी कोरियाने इसपर ध्यान नहीं दिया। इसपर २७ जून, १९५०को सुरक्षापरिषद्ने एक मतसे प्रस्ताव स्वीकार कर, सदस्य-राष्ट्रों से यह अनुरोध किया कि 'आक्रमणका प्रतिरोध करने तथा शान्ति और सुरक्षाकी स्थापनाके लिए वे कोरियाथी गणराज्य (दक्षिणी कोरिया) की सहायता करें।"

उपर्युक्त दोनों निर्णयोंके सम्बन्धमें भारतका जो मत रहा, वह उसने छिपाया नहीं। प्रसङ्गान्तर्गत साधारणतः इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इस सम्बन्धमें भारतका विस्तृत मत उस समुद्री तारमें उल्लिखित है, जो प्रधान मंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरूने २९ जून, सन् १९५० को संयुक्त राष्ट्रसंघके तत्कालीन महामन्त्री श्री ट्रिग्वी लीके पास भेजा था। इसमें कहा गया था कि "भारत सरकार कोरियाकी घटनाओंको, जिसमें न केवल गृह-युद्ध अन्तर्भुक्त है, बल्कि जिनसे विश्व-शान्तिके लिए भी खतरा उत्पन्न हो गया है, अत्यन्त गम्भीर समझती है। भूत-कालमें उत्तरी और दक्षिणी कोरियाकी सीमाओंपर अनेक घटनाएँ घटती रहीं। इनका स्वरूप चाहे जो रहा हो लेकिन भारत सरकारको जो सूचनाएँ मिलीं, उनसे यह प्रतीत होता है कि उत्तरी कोरियाकी सशस्त्र सेनाओंने व्यापक रूपमें दक्षिणी कोरियापर आक्रमण किया। यह सूचना भारतको अनेक सूत्रोंसे प्राप्त हुई। इनमें सबसे अधिक अधिकृत सूचना संयुक्त राष्ट्र-संघके कोरिया-स्थित आयोगकी

है। जिसमें भारतको भी प्रतिनिधित्व प्राप्त है। आक्रमण-कालमें आयोग सिऊल (दक्षिणी कोरियाकी राजधानी) में ही था।" इस सूचनापर ध्यान देकर, संयुक्त राष्ट्रसंघ-स्थित स्थायी भारतीय प्रतिनिधि और सुरक्षा परिषद्के सदस्य श्री बी० एन० रावने सुरक्षा परिषदके प्रस्तावका समर्थन किया जिसमें आक्रमणका उल्लेख करते हुए युद्ध बंद करने तथा ३८वीं अक्षांशमें अपनी सेनाएँ हटानेके लिए उत्तरी कोरियासे कहा गया है। उत्तरी कोरियाकी सरकारने सुरक्षा-परिषद्के निर्देशका पालन नहीं किया और उसकी सेनाओंका आक्रमण तब तक जारी रहा जब तक सिऊलके लिए संकट नहीं उत्पन्न हो गया। त्वरित गतिसे परिवर्तित होनेवाली इस स्थितिपर विचार करनेके लिए संयुक्त राष्ट्रसंघकी सुरक्षा-परिषद्की बैठक पुनः हुई और उसने २७ जूनको दूसरा प्रस्ताव स्वीकार किया (न्यूयार्क टाइम्स)। भारत सरकारका प्रतिनिधि इस प्रश्नपर हुए मत-दानमें भाग न ले सका; क्योंकि समयके अंदर इसकी सूचना भारत सरकारको देकर उसका निर्देश वह प्राप्त न कर सका था। इस प्रस्तावके क्रियात्मक भागमें यह सिफारिशकी गयी कि सदस्य-राष्ट्र कोरियाई गणराज्यको ऐसा सहयोग प्रदान करे जो सशस्त्र आक्रमणको रोकने तथा युद्ध-ग्रस्त क्षेत्रमें अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षाकी स्थापनाके लिए आवश्यक हो। कोरियाकी घटनाओं और अपनी परराष्ट्र-नीतिके संदर्भमें भारतने सुरक्षा परिषद् के इस प्रस्तावपर भलीभांति विचार किया। भारत सरकार किसी प्रकारकी आक्रमणात्मक कार्रवाईसे अन्तर्राष्ट्रीय विवादको हल करनेके प्रयासके विरुद्ध है। इसलिए भारत सरकारकी ओरसे उसके प्रतिनिधि श्री बी० एन० रावने सुरक्षा परिषद्के प्रथम प्रस्तावका समर्थन किया। संतोषजनक निपटारेके लिए आक्रमणको रोकना और शीघ्र शांति स्थापित करना आवश्यक है। इसलिए भारत सरकार सुरक्षा परिषद्के दूसरे प्रस्तावको भी स्वीकार करती है। फिर भी भारत सरकारके इस निर्णयमें कोई ऐसी बात शामिल नहीं है जिससे उसकी परराष्ट्र-नीतिमें परिवर्तन होता हो। उसकी यह नीति विश्व-शांतिको आगे बढ़ाने

और सभी देशोंसे मैत्रीके विकासपर आधारित है। यह स्वतंत्र नीति है जो भारतके आदर्शों एवं लक्ष्यों द्वारा निश्चित होती रहेगी। भारत सरकार हृदयसे यह विश्वास करती है कि वर्तमान दशामें भी युद्धको समाप्त करना और समझौते द्वारा विवादका अंत करना सम्भव होगा।"[1]

चीनी लोक-गणतंत्रने तत्काल संयुक्त राष्ट्रसंघकी सुरक्षाकी परिषद्के प्रस्तावोंपर कोई मत व्यक्त नहीं किया था। रूसके साथ उसका इस मामलेमें जो सम्बन्ध रहा है तथा रूस जिस प्रकार उसका पक्ष ग्रहण करता रहा है, उसको देखते हुए चीनके रुखका अन्दाज उपर्युक्त प्रस्तावोंपर रूसकी प्रतिक्रियाके आधारपर लगाया जा सकता है। २७जून, १९५०को सुरक्षा परिषद् द्वारा स्वीकृत प्रस्तावकी सूचना मिलनेपर रूसकी सरकारने संयुक्त राष्ट्रसंघके महामंत्री श्री ट्रिग्वी लीको जो पत्र (२८ जून) लिखा था, वह २९ जून, १९५०के रूसके समाचार पत्र 'प्रावदा'में प्रकाशित हुआ था। रूसकी सरकारने लिखा था, "२७ जूनको सुरक्षा परिषद् द्वारा स्वीकृत प्रस्तावका मसविदा जो आपने भेजा, वह रूसी सरकारको मिला। इसमें दक्षिणी कोरियाके पक्षमें संयुक्त राष्ट्रसंघके सदस्योंके हस्तक्षेपकी आवश्यकता बतायी गयी है।

"सोवियत सरकारका कहना है कि यह प्रस्ताव छः मतोंसे स्वीकृत हुआ। सातवाँ मत कोमिंतांगके प्रतिनिधि त्सियांग तिंग फू का रहा जिसको चीनका प्रतिनिधित्व करनेका कोई भी कानूनी अधिकार प्राप्त नहीं है। संयुक्त राष्ट्रसंघके अधिकार-पत्र (चार्टर) के अनुसार सुरक्षा परिषद् द्वारा स्वीकृत प्रस्तावकी वैधताके लिए सात मतोंका पक्षमें होना आवश्यक है। इनमें सुरक्षा-परिषद्के पाँच स्थायी सदस्य अर्थात् अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, सोवियत संघ और चीन शामिल हैं।

"यह सभी जानते हैं कि जब सुरक्षा परिषद्में उपर्युक्त प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, उस समय परिषद्के दो स्थायी सदस्य—सोवियत संघ और चीन, अनुपस्थित थे।

१. अमेरिका के परराष्ट्र-विभाग द्वारा प्रकाशित पुस्तक—'यूनाइटेड स्टेट्स पालिसी इन दी कोरियन क्राइसिस'—पृ० सं० ४२।

राष्ट्रसंघके अधिकार-पत्रके अनुसार सुरक्षा परिषद् महत्वपूर्ण मामलोंके सम्बन्धमें तभी निर्णय कर सकती है जब परिषद्के पांचों स्थायी सदस्य—अमेरिका ब्रिटेन, फ्रांस, सोवियत् संघ और चीन एक मतसे उसके पक्षमें अपना मत व्यक्त करें।

"ऊपर लिखी हुई बातोंसे यह साफ जाहिर है कि कोरियाके प्रश्नपर सुरक्षा परिषद्के निर्णयको कोई कानूनी शक्ति प्राप्त नहीं है।"[१]

रूसके इस पत्रसे स्पष्ट हो जाता है कि कोरियायी युद्धके सम्बन्धमें भारतका मत रूस और चीनमें सही स्वीकार नहीं किया गया था। भारत और उसके प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू पर इसका वही प्रभाव न पड़ा, जो अन्य पश्चिमी देशों तथा उनके मित्र-राष्ट्रोंपर पड़ा।

पंडित जवाहरलाल नेहरूने कोरियामें शांतिकी स्थापनाके लिए स्वतंत्र रूपसे अपना प्रयास जारी रखा। सुरक्षा परिषद्के २७ जून, १९५०के प्रस्तावके अनुसार लगभग तीस राष्ट्रोंने दक्षिणी कोरियाके सहायतार्थ अपनी सैनिक टुकड़ियाँ वहाँ भेजीं लेकिन भारत ने ऐसा नहीं किया। उसने घायलोंकी सेवा-सुश्रूषाके लिए एक चिकित्सकीय दल अवश्य भेजा जिसके कार्यकी प्रसंशा की गयी।

१३ जुलाई, सन् १९५०को पंडित जवाहरलाल नेहरूने सोवियत संघकी कौंसिल आफ मिनिस्टर्सके तत्कालीन अध्यक्ष श्री जे० वी० स्तालिनके नाम एक पत्र भेजा था। श्री स्तालिनने १५ जुलाईको इसका उत्तर नेहरूजीको लिखा था। बादमें यह पत्र-व्यवहार प्रकाशित कर दिया गया था। नेहरूजीने अपने उपर्युक्त पत्रमें लिखा था—"मास्कोमें परराष्ट्र-मंत्रालयके अधिकारियोंके साथ हमारे राजदूतकी जो बातें हुईं, उसमें उन्होंने कोरिया-विवादके सम्बन्धमें भारतके दृष्टिकोणको स्पष्ट कर दिया था। युद्धको कोरिया तक सीमित रखना और सुरक्षा-परिषद्में वर्तमान जिचको मिटाकर शीघ्रही विवादके शांतिपूर्ण निपटारेके कार्य में सहयोग प्रदान करना ही भारतका लक्ष्य है, ताकि चीनी लोक-गणतंत्रका प्रतिनिधि सुरक्षा-परिषद्में अपना स्थान प्राप्त कर सके, सोवियत संघ उसमें पुन: भाग

१. रूस की समाचार समिति 'तास' के भारत स्थित (नयी दिल्ली) प्रतिनिधि द्वारा प्रकाशित पुस्तक—"अमेरिकन आर्म्ड इंटरवेंशन इन कोरीया"—१९५०।

ले और सुरक्षा परिषद् में अथवा उसके बाहर गैर सरकारी सम्पर्क द्वारा सोवियत् संघ, संयुक्तराष्ट्र अमेरिका और चीन, अन्य शान्ति-प्रिय राष्ट्रों की सहायता और सहयोग से युद्ध को बन्द करने का आधार तथा अन्तिम रूप से कोरिया की समस्या के हल का उपाय ढूँढ़ सके। शान्ति को बनाये रखने तथा इस प्रकार संयुक्त राष्ट्रसंघ की अक्षुण्णता को कायम रखने के आपके दृढ़ संकल्प में पूर्ण विश्वास होने के कारण मैं इस अपील के साथ यह व्यक्तिगत पत्र लिखने का साहस कर रहा हूँ। शान्ति की स्थापना के समान उद्देश्य की पूर्ति के लिए आप अपने अधिकार और प्रभाव का उपयोग करें। इस पर मानवता की भलाई निर्भर है।"[1]

इस प्रकार का एक पत्र नेहरूजी ने अमेरिका के तत्कालीन परराष्ट्र मन्त्री श्री अचेसन को भी लिखा था। दोनों पत्रों का कोई व्यवहारिक परिणाम न निकला। सन् १९५० के अन्त में भारत की लोकसभा में अपनी परराष्ट्र नीति का सिंहावलोकन करते हुए नेहरूजी ने स्वयं यह स्वीकार किया था। इसका कारण यह था कि सुरक्षा परिषद ने चीनी लोक गणतन्त्र के प्रतिनिधि को बुलाना कभी स्वीकार नहीं किया। १ अगस्त, सन् १९५० से ३१ अगस्त, १९५० की अवधि में (इस अवधि में सुरक्षा परिषद की अध्यक्षता रूसी प्रतिनिधि ने की थी) रूस के प्रतिनिधि ने चीनी लोक गणतन्त्र के प्रतिनिधि को आमन्त्रित करने का प्रस्ताव भी प्रस्तुत किया था किन्तु सुरक्षा परिषद ने उसे ठुकरा दिया था। इस पर कशमकश बराबर बनी रही। इसी बीच २५ अगस्त, १९५० को चीनी लोक गणतन्त्र ने सुरक्षा परिषद से यह प्रार्थना भी की थी कि फारमोसा तथा चीन के अन्य भूभाग से अमेरिका की सशस्त्र सेना को हटाने की कार्यवाई तत्काल की जाय। इसके उत्तर में अमेरिका के प्रतिनिधि ने कहा था कि 'फारमोसा के मामले पर विचार किये जाने का हम स्वागत करेंगे।' २९ अगस्त, १९५० को रूसी प्रतिनिधि श्री मलिक ने यह प्रस्ताव रखा था कि

---

१. 'अमेरिकन आर्म्ड इंटरवेंशन इन कोरिया'—पृ० सं० २४-२५।

फारमोसा पर विचार सुरक्षा परिषद् के कार्यक्रम में शामिल किया जाय। इसके सम्बन्ध में भारत के प्रतिनिधि श्री बेंगल नरसिंह राव द्वारा प्रस्तुत शब्दावली (फारमोसा द्वीप पर आक्रमण की शिकायत) ही स्वीकार की गयी थी।[1]

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, कोरिया में शान्ति की स्थापना के सम्बन्ध में भारत की ओर से पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने प्रारम्भ में जो प्रयास किया, उसका कोई फल न मिला। फिर भी नेहरूजी ने इसकी उपेक्षा नहीं की और वह स्थिति का अध्ययन गम्भीरतापूर्वक बराबर करते रहे। ६ दिसम्बर, १६५० को भारत की लोकसभा में नेहरूजी द्वारा किये गये भाषण के कोरिया-सम्बन्धी अंश से यह स्पष्ट है। इस भाषण का सम्बन्धित अंश इस प्रकार है—"दक्षिणी कोरिया पर उत्तरी कोरिया के आक्रमण का मामला संयुक्त राष्ट्रसंघ के समक्ष प्रस्तुत किया गया। सुरक्षा परिषद् ने यह आक्रमणात्मक कार्रवाई मानी। हमने इस निर्णय का समर्थन किया और इसके अनुसार मत दिया। बाद में अन्य बातें भी पैदा हुईं। स्थिति को उत्तरोत्तर जटिल होते देखकर मैंने एक पत्र मार्शल स्टालिन तथा एक पत्र श्री अचेसन को लिखा। यह मध्यस्थता करने का प्रयास न था। हमने इस दृष्टि से कभी सोचा ही नहीं। मैंने इस धुँधली आशा के साथ अपील की कि शायद कोई निश्चित बात सामने आ जाय। पहले पत्र में यह सुझाव था कि चीन संयुक्त राष्ट्रसंघ में शामिल कर लिया जाय और रूस सुरक्षा परिषद् का बहिष्कार करना त्याग दे। हमने चीन की सरकार को मान्यता प्रदान की है। इस तथ्य में स्वाभाविक रूप में यह बात निहित है कि जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है, हम यह मानते हैं कि चीन को संयुक्त राष्ट्रसंघ का एक अङ्ग होना चाहिये। जिस सन्दर्भ में मैंने यह सुझाव रखा, उसमें गलत या सही मामले से अधिक जोर वस्तुतथ्य की आवश्यकता पर था। हमारा यह विचार है कि सुदूर पूर्व की समस्या पर सन्तोषपूर्ण ढंग से तभी विचार हो सकता है, जब सम्बन्धित देश गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने पर सहमत हो जायँ।

---

१. 'ए कोरियन क्रानोलाजी' १६५० संयुक्त राष्ट्रसंघके सूचना विभाग का प्रकाशन — पृ० सं० ६।

"संयुक्त राष्ट्रसंघ महान् और शक्तिवान् संस्था है। उसके घोषणा-पत्र में उसके आदर्श और उद्देश्य इतनी प्रभावशाली भाषा में उल्लिखित हैं कि उसे और अधिक प्रभावशाली बनाना कठिन है। संयुक्त राष्ट्रसंघ का संघटन छोटे और बड़े सभी राष्ट्रों के लिए किया गया है। हमारा यह विचार था कि कोरिया की समस्या से अत्यधिक सम्बन्ध रखने वाले देश संयुक्त राष्ट्रसंघ में एक दूसरे से मिले। इसके बिना स्थिति के और अधिक खराब होने की सम्भावना थी। सचमुच स्थिति और अधिक खराब हुई भी। इस बात पर ध्यान देते हुए ही मैंने रूस और अमेरिका से अपील की लेकिन दुर्भाग्यवश इसका कोई फलदायक परिणाम न निकला।

बाद में उत्तरी कोरिया के आक्रमण का अवरोध हुआ। उसकी सेनाएँ पीछे हटा दी गयीं। ऐसा मालूम होने लगा कि वे पूर्णतः विघटित हो गयी हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ पूर्णतः विजयी प्रतीत होने लगा। वास्तव में यह हुआ भी। इस विजय ने अनिवार्यतः कुछ बुनियादी प्रश्नों को पैदा किया। क्या संयुक्त राष्ट्रसंघ की सेनाओं को बराबर आगे बढ़ते जाना चाहिये? यदि हाँ, तो उन्हें कहाँ तक आगे बढ़ना चाहिये? हमने पेकिंग-स्थित अपने राजदूत से तथा अन्य देशों में अपने प्रतिनिधियों से परामर्श किया और यह जानना चाहा कि दूसरे देश किस दृष्टि से घटनाओं को देख रहे हैं। चीन के सम्बन्ध में सम्भवतः हमारी विशेष जिम्मेदारी रही है, क्योंकि हम उन थोड़े से देशों में हैं जिनके प्रतिनिधि वहाँ हैं। इसके अलावा सोवियत् गुट के देशों के अतिरिक्त भारत ही एक ऐसा देश है जो यह जान सकता था कि चीन सरकार पर कोरिया की घटनाओं की क्या प्रतिक्रिया हुई है।

"चीन सरकार ने यह स्पष्ट कर दिया कि यदि ३८ वीं अक्षांश रेखा को संयुक्त राष्ट्रसंघ की कमान की सेनाओं ने पार किया तो हम इसे अपनी सुरक्षा के लिए गम्भीर खतरा समझेंगे और यह बरदास्त न करेंगे। चीन का रुख गलत था या नहीं, यह विचारणीय नहीं है। अस्तु, निर्णय यह किया गया कि संयुक्त राष्ट्र-संघ की फौजों को ३८ वीं अक्षांश रेखा के आगे बढ़ना चाहिये। संघीय सेनाओं ने यही किया और उसे पुनर्गठित उत्तरी कोरियाई सेना से और बाद में चीन की सेनाओं से युद्ध करना पड़ा। चीन सरकार ने कहा

कि युद्ध में भाग लेने वाले स्वयंसेवक हैं लेकिन प्राप्त सूचनाओं के अनुसार नियमित चीनी सेना के सैनिक युद्धरत है।"

कोरिया के मामले में चीन के प्रति नेहरूजी के दृष्टिकोण का और अधिक स्पष्टीकरण करने से पूर्व यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि अगस्त १९५० में सात हजार मील की दूरी तय करके अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, टर्की, थाइलेण्ड, फिलिपाइन्स, इथोपिया तथा अन्य देशों की सेनाएँ दक्षिणी कोरिया में पहुंच गयी थीं। इनके वहाँ पहुँचने पर दक्षिणी कोरिया के दक्षिण पूर्वी भाग में मोर्चेबन्दी हुई और उत्तरी कोरिया की सेना को आगे बढ़ने से रोक दिया गया। अमेरिका के सैनिक और अधिक संख्या में आ गये और साम्यवादियों का मोर्चा भंग कर दिया गया।

७ अगस्त, १९५० को संयुक्त राष्ट्र-संघ की साधारण सभा ने एक प्रस्ताव स्वीकृत किया जिसमें संयुक्त और स्वतन्त्र कोरिया की स्थापना का निश्चय व्यक्त किया गया था। इसके फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्रसंघ की सेनाओं ने उत्तर दिशा में और आगे बढ़ना शुरू कर दिया। नतीजा यह हुआ कि अक्तूबर, १९५० का अन्त होते-होते चीनी सैनिक जिन्हें चीन ने स्वयंसेवकों की संज्ञा प्रदान की थी, युद्ध में कूद पड़े। संयुक्त राष्ट्रसंघ की सेना प्रतिरोध करने में असफल रही और उसे ३८ वीं अक्षांश से पीछे हटना पड़ा। इस प्रकार कोरिया के विवाद में चीनी लोक गणतन्त्र प्रत्यक्षतः सामने आ गया।

युद्धाग्नि की लपटें बराबर बढ़ती गयीं। भारत की ओर से पुनः इन्हें शान्त करने का प्रयास किया गया। ५ दिसम्बर, १९५० को भारत के सुझाव पर "तेरह एशियाई देशों ने संयुक्त रूप से कम्युनिस्टों से अपील की कि वे अपनी सेनाएँ ३८ वीं अक्षांश रेखा के आगे न बढ़ने दें। लेकिन इस पर तनिक भी ध्यान न दिया गया।"[1] पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने भारत की लोक सभा में

१—'ओरल रिपोर्ट आफ द सेक्रेटरी आफ स्टेट (अमेरिका) डेलीवर्ड बिफोर द पोलिटिकल एण्ड सिक्यूरिटी कमेटी आफ द युनाइटेड नेशंस जेनरल असेम्बली'—अक्तूबर, २४, १९५२ (अमेरिका के परराष्ट्र विभाग का प्रकाशन)।

इस प्रयास का उल्लेख इस रूप में किया था—"लेक सक्सेसस्थित हमारे प्रतिनिधि ने काफी एशियाई देशों के प्रतिनिधियों से परामर्श करने के बाद संयुक्त राष्ट्र-संघ में यह प्रस्ताव रखा कि चीन सरकार से विराम संधि करने के लिए राजी होने और यह आश्वासन देने को कहा जाय कि चीनी सेनाएँ ३८ वीं अक्षांश रेखा पार न करेंगी।........ हमारे प्रतिनिधि श्री बी० एन० राव ने यह प्रस्ताव रखा और प्रायः सभी एशियाई देशों ने उसका समर्थन किया। मालूम नहीं कि चीन सरकार की प्रतिक्रिया क्या होगी लेकिन हम अपने प्रतिनिधि द्वारा उठाये गये कदम का स्वागत करते हैं।" १

इसके बाद अक्तूबर, सन् १९५१ तक का कोरियाई युद्ध का इतिहास आरोपों और प्रत्यारोपों से भरा पड़ा है। अमेरिका और उसके साथी-राष्ट्र संयुक्त राष्ट्रसंघ की मोहर के साथ जिस बात को कहते, रूस और उसके मित्र-राष्ट्र उसे ठुकरा देते। यही दशा रूस द्वारा प्रस्तुत प्रस्तावों की भी हुई।

सुदूर पूर्व में युद्ध का संकट दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा था। इस संकट की ओर से नेहरूजी ने कभी आँखें नहीं फेरी। इसके साथ ही इसके मूल कारण के सम्बन्ध में भी उन्होंने अपने मत में परिवर्तन नहीं किया। उन्हें जब-जब अवसर मिला, तब-तब उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि चीनी लोक गणतन्त्र के प्रतिनिधी को संयुक्त राष्ट्रसंघ में शामिल कर लेने पर कोरिया की समस्या को सुलझाना आसान होगा। सन् १९५१ के प्रारम्भ में उन्होंने एक बार पुनः इस ओर विश्व का ध्यान आकृष्ट किया और कहा कि "आज सबसे अधिक प्रबल समस्या सुदूर पूर्व में शांति की स्थापना की है। कई मास से कोरिया में पैशाचिक युद्ध हो रहा है जिसमें हजारों निर्दोष व्यक्ति कुरबान हो चुके हैं। मेरे विचार में यह सत्य है कि उत्तरी कोरिया की ओर से आक्रमण हुआ लेकिन यह भी सत्य है कि सभी सम्बन्धित देशों में कोई भी पूर्णतः निर्दोष नहीं है। पिछले साल से या इससे भी अधिक समय से हम यह अनुरोध करते रहे हैं कि लेक सक्सेस की विश्वपरिषद् में चीनी गणतन्त्र को भी स्थान दिया जाना चाहिये लेकिन ऐसा नहीं हुआ और अब अधिकतर लोग यह महसूस

---

१. पार्लियामेण्ट में नेहरूजी का भाषण-- ७ दिसम्बर, १९५० ।

करते हैं कि चीन से संबन्धित स्पष्टतः नजर आने वाला तथ्य यदि स्वीकार कर लिया जाता तो विश्व की स्थिति आज की स्थिति से भिन्न होती।"[1]

जैसा कि होता रहा, इस भाषण का भी अपेक्षित प्रभाव कोरिया युद्ध से सम्बद्ध बड़े राष्ट्रों पर न पड़ा। इसके बावजूद शांति-स्थापना के प्रयास के पक्ष में भारत की स्थिति सुदृढ़ होती गयी और लगभग दो वर्षों के बाद इसका शुभ परिणाम सांकेतिक रूप से साफ साफ नजर आने लगा।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद् के रूसी प्रतिनिधि श्री जेकब मलिक का एक भाषण युद्ध-विराम वार्ता के सम्बन्ध में २३ जून सन् १९५१ को न्यूयार्क रेडियो से सुनाया गया। इस भाषण में श्री मलिक ने कहा था कि "सोवियत जनता यह विश्वास करती है कि आज की सर्वाधिक ज्वलंत समस्या, कोरिया में सशस्त्र संघर्ष की समस्या भी सुलझाई जा सकती है। सोवियत जनता का यह विश्वास है कि प्रथम चरण के रूप में युद्ध-बन्दी की वार्ता युद्धरत राष्ट्रों के बीच प्रारम्भ होनी चाहिये।" यह महत्वपूर्ण घोषणा थी। इसकी ओर सभी राष्ट्रों का ध्यान आकृष्ट हुआ। इसके बाद ही मास्को स्थित अमेरिकी दूत ने श्री ग्रोमिको से भेंट की और श्री मलिक के उपर्युक्त भाषण का स्पष्टीकरण चाहा। श्री ग्रोमिको ने बताया कि 'विराम सन्धि वार्ता में दो बातें होनी चाहिये। (१) युद्ध-बन्दी और (२) केवल सैनिक प्रश्नों पर विचार। इसमें राजनीतिक और क्षेत्रीय समस्याएँ शामिल न की जानी चाहिये।' इस स्पष्टीकरण के बाद कोरिया में संयुक्त राष्ट्रसंघ की सेना के प्रधान जनरल रिजवे ने कम्युनिस्ट कमान से संपर्क स्थापित किया और पानमुनजान में विराम सन्धि वार्ता प्रारम्भ करने की तैयारी की गयी। इस प्रयास में पहले तो विचारणीय विषयों की सूची तैयार करने की समस्या पर ही काफी चख-चख हुई। अन्ततः चौदह दिनों की वार्ता के बाद कार्य-सूची का निर्धारण हो सका। इसमें मुख्यतः दो बातें थीं—(१) कोरिया में युद्ध बन्द करने की मूल शर्त के रूप में असैनिक क्षेत्र के निर्धारणार्थ सैनिक हदबन्दी की रेखा निश्चित करना और

१. २४ जनवरी, सन् १९५१ को आल इण्डिया रेडियो के दिल्ली स्टेशन से ब्राडकास्ट किया गया नेहरू जी का भाषण।

(२) युद्ध-बन्दी और विराम सन्धि की शर्तें पूरी कराने के लिए निश्चित व्यवस्था करना जिसमें इसका निरीक्षण करने वाली संस्था के संघटन, उसके अधिकार और कार्य का निर्देश भी शामिल था।

सैनिक हदबन्दी की रेखा निश्चित करने में ही पूरे चार मास का समय व्यतीत हो गया। अन्त में २७ नवम्बर, सन् १९५१ को यह समस्या हल हो सकी। दूसरी समस्या पुनः उलझ गयी। अनेक राजनीतिक प्रश्न सामने आ गये। उतार-चढ़ाव प्रारम्भ हो गया। किसी प्रकार इस आधार पर विराम सन्धि का मामला तय हो सका कि सन्धि के लागू होने के तीन मास के बाद आपसी बातचीत के द्वारा कोरिया से विदेशी सेनाओं को हटाने तथा शान्तिपूर्ण ढंग से कोरिया की समस्या हल करने के लिए उच्च स्तर पर राजनीतिक सम्मेलन आयोजित हो। विषय-सूची का पहला कार्य समाप्त करने में जहाँ चार मास लगे, वहीं दूसरा कार्य उपर्युक्त रूप में पाँच मास के बाद पूरा हो सका। इसके बाद तो झगड़ा लम्बा हो गया। युद्ध-बन्दियों को हटाने के प्रश्न को लेकर मामला बुरी तरह उलझ गया और ऐसा प्रतीत होने लगा कि युद्ध की आग पुनः भड़क उठेगी। एक ओर यह स्थिति थी, दूसरी ओर संयुक्त राष्ट्रसंघ में वाक्-युद्ध जारी था। स्थिति को खराब न होने देने की चेष्टा में भारत ने पुनः महत्त्वपूर्ण भाग लिया।

१६ अक्तूबर, सन् १९५२ को होने वाली संयुक्त राष्ट्रसंघ की साधारण सभा की ३८० वीं बैठक और संघ के सातवें अधिवेशन में विचारार्थ प्रस्तुत किये जाने वाले विषयों की जो सूची निश्चित की गयी, उसमें कोरिया की समस्या भी शामिल थी। इसके अनुसार ३ दिसम्बर, सन् १९५२ को साधारण सभा के प्रारम्भिक अधिवेशन में कोरिया की समस्या सामने आयी। सर्व प्रथम संयुक्त राष्ट्रसंघ के कोरिया कमीशन की रिपोर्ट सामने आयी। इस पर विचार व्यक्त करते समय कोरियाई गणराज्य के प्रतिनिधि ने जिसे विचार-विमर्श में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया गया था, रिपोर्ट के कई अंशों की आलोचना की। अन्य प्रतिनिधियों ने संक्षेप में अपने विचार व्यक्त किये। बहस मुख्यतः इन बातों तक सीमित थी—(१) कोरियाई प्रश्न का पहला इतिहास और विशेषतः वहाँ युद्ध आरम्भ करने की जिम्मेदारी, (२) पानमुनजान वार्ता की

प्रगति और वहाँ वार्ता में जिच उत्पन्न होने की जिम्मेदारी किस पर एवं (२) युद्ध-बन्दियों की वापसी का मामला।

बहस में भाग लेने वाले अधिकतर प्रतिनिधियों ने यह मत व्यक्त किया कि "कोरिया की समस्या में अन्तर्मुख्यतः राजनीतिक मामलों पर बहस करने से पूर्व कोरिया में युद्ध को रोकना आवश्यक है और विराम सन्धि के मार्ग में बाधक दिखाई देनेवाला सर्वप्रमुख प्रश्न युद्धबन्दियों की वापसी का ही है। फलतः इस प्रश्न पर ही सर्वप्रथम विचार आरंभ हुआ। प्रथमतः साधारण सभा की राजनीतिक समिति में जिसकी बैठक २३ अक्तूबर से २ दिसंबर, १९५२ तक हुई, कोरियाई युद्धबन्दियों की वापसी के प्रश्न पर पाँच प्रस्तावों के प्रारूप पेश किये गये। इनमें पहला प्रस्ताव संयुक्त रूप से इक्कीस राष्ट्रों द्वारा प्रस्तावित था जिनमें ब्रिटेन, अमेरिका और आस्ट्रेलिया आदि शामिल थे। दूसरा प्रस्ताव सोवियत रूस का, तीसरा मेक्सिको का, चौथा पेरू का और पाँचवाँ भारत का था। भारत के प्रस्ताव में दोनों पक्षों की बातें रखने की चेष्टा की गयी थी, अतः सबसे पहले इस पर ही विचार करने का निर्णय समिति ने किया।[१] १ दिसंबर १९५२ को संशोधित रूप में भारत का प्रस्ताव बहुमत द्वारा स्वीकार कर लिया गया लेकिन उसका परिणाम कुछ भी नहीं निकला; क्योंकि रूस इससे सहमत न हुआ।

यद्यपि उपर्युक्त प्रस्ताव पेश करने से पूर्व भारत ने कोरियाई युद्ध से संबन्धित सभी देशों की राय ले ली थी और यथासाध्य सब के मत को प्रस्ताव में अधिक से अधिक स्थान देने का प्रयास किया था, तथापि रूस और उसके समर्थक राष्ट्रों ने उसे स्वीकार नहीं किया। लगभग अढ़ाई मास के बाद उपर्युक्त प्रस्ताव के संदर्भ में नेहरूजी ने कोरियाई समस्या का उल्लेख जिस रूप में किया था, उसमें प्रस्ताव की पृष्ठभूमि का विवरण भी मिलता है। नेहरूजी ने कहा था—"सुदूर पूर्व की समस्याओं पर विचार संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्यक्रम में शामिल है। राष्ट्रसंघ के आगामी अधिवेशन में इन पर विचार होगा। मैं

१. 'इयर बुक आव दि युनाइटेड नेशंस'—१९५२ पृ० सं० १७९।

अभी यह नहीं कह सकता कि उस समय हमारे प्रतिनिधि को क्या कहना होगा, क्योंकि आगामी दो तीन सप्ताह के अन्दर घटने वाली घटनाओं पर ही सब कुछ निर्भर होगा। फिलहाल इतना ही कहा जा सकता है कि मोटे तौर पर वह उसी नीति का अनुसरण करेंगे जो नीति हमारी है। मैं संयुक्त राष्ट्रसंघ में भारत के द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले प्रस्ताव के सम्बन्ध में संक्षेप में कुछ कहना चाहता हूं। जब से कोरियाई युद्ध आरम्भ हुआ है, तब से इस समस्या के साथ भारत का गहरा सम्बन्ध रहा है। यह इसलिए नहीं कि हम दूसरों के मामले में हस्तक्षेप करना चाहते हैं या किसी को धमकी देना चाहते हैं, बल्कि इसलिए कि समस्या को सुलझाने में सहायता करने की दृष्टि से अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा हमारी स्थिति अधिक अच्छी है। वहाँ संघर्षरत राष्ट्रों से हमारा सम्बन्ध मित्रता-पूर्ण है। हमने कोरिया की विपत्ति-ग्रस्त जनता के प्रति अपनी जिम्मेदारी महसूस की और यह प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई कि कोरिया का सर्वनाश और ध्वंस किसी भी मूल्य पर रोका जाना चाहिये।"

"मैं पिछला इतिहास नहीं दोहराना चाहता। हमने अनेक कदम उठाये जिनका फल तत्काल नहीं मिला लेकिन बाद में जिन्हें सही मान लिया गया। सुदूर पूर्व की स्थिति के सम्बन्ध में सबसे पहले हमारा ध्यान जिस बात पर जाता है, वह है आज की अस्वाभाविक स्थिति। जब तक महान् देश चीन से वार्ता नहीं की जाती, तब तक कोई प्रभावकारी कार्य पूरा नहीं हो सकता। यही कारण है कि हमने प्रारम्भ में ही चीन को मान्यता प्रदान की और संयुक्त राष्ट्रसंघ एवं उसके बाहर अन्य देशों से भी इस नीति को बिना इस बात पर ध्यान दिये अपनाने का अनुरोध किया कि वे चीन की नीति पसन्द करते हैं या नहीं। चीन-सम्बन्धी तथ्य बिलकुल साफ हैं और मैं समझता हूँ, उसे मान्यता न प्रदान करना बुनियादी रूप में संयुक्त राष्ट्रसंघ के घोषणा-पत्र और उसकी भावनाओं का उल्लंघन करना है। कोई भी यह नहीं कह सकता कि संयुक्त राष्ट्रसंघ से एक ही नीति का अनुसरण करने वाले राष्ट्रों के प्रतिनिधित्व की आशा की जाती है। दुर्भाग्यवश, संयुक्त राष्ट्रसंघ में यह धारणा घर करती जा रही है। परिणामतः चीन ऐसे विशाल राष्ट्र से इस प्रकार का व्यवहार किया गया, मानो उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है और चीन से दूर स्थित

द्वीप को चीन का प्रतिनिधि मान लिया गया है। यह असाधारण बात है। मेरी समझ में यह तथ्य ही सुदूरपूर्व की समस्या का मूल है। वास्तविकता की उपेक्षा स्वाभाविक रूप में अस्वाभाविक नीति और कार्यक्रम की ओर ले जाती है। यही हो रहा है।

"कुछ मास पूर्व संयुक्त राष्ट्रसंघ में कोरिया-सम्बन्धी प्रस्ताव पेश करने से पूर्व हम लगातार चीन, युनाइटेड किंगडम, संयुक्तराष्ट्र अमेरिका तथा अन्य राष्ट्रों की सरकारों के सम्पर्क में रहे। हम ऐसा कोई कदम नहीं उठाना चाहते थे जिससे अन्य राष्ट्रों को कुछ परेशानी महसूस होती; क्योंकि इससे सहयोग की हमारी आकांक्षाओं के मार्ग में हो कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जातीं। कभी कभी हम एक राष्ट्र को दूसरे के दृष्टिकोण से भी अवगत करा देते। इसके फलस्वरूप हम काफी हद तक चीन की दृष्टि के अनुकूल प्रस्तावना बना सकने में सफल हुए। मैं यह नहीं कहता कि इसमें शत प्रतिशत चीन की दृष्टि का उल्लेख है लेकिन निश्चय ही इसमें उसके विचारों का प्रतिनिधित्व करने की कोशिश की गयी है। इसकी मुख्य बात यह है कि बन्दियों को अदला-बदली के मामले पर जनेवा कंवशेसन पर अमल करना चाहिये।

दूसरी बात ध्यान में रखने योग्य यह है कि यह प्रस्ताव केवल बंदियों की अदला-बदली के सम्बन्ध में था। जो यह जानना चाहते हैं कि युद्ध-बंदी का उल्लेख इसमें क्यों नहीं है, वह विवाद के तथ्य को भूल जाते हैं। सब जानते हैं कि इससे पूर्व डेढ़ वर्ष से पानमुनजान में संधि-वार्ता हो रही थी। बड़ी मुश्किल से बंदियों की अदला-बदली को छोड़ कर अन्य मामलों के सम्बन्ध में समझौता हो सका। स्पष्ट है कि विराम संधि का पहला लक्ष्य युद्ध-विराम था। समझौते का प्रथम परिणाम भी यही रहा! इसलिए अनिर्णीत प्रश्न को हमने लिया। यह भी उस समझौते के अधीन जिसके सम्बन्ध में करार हो चुका था। प्रस्ताव तैयार करने से पूर्व उन सिद्धान्तों पर, जिन पर वह आधारित है, विस्तार से विचार कर लिया गया था। नवम्बर के प्रारम्भ में इन सिद्धान्तों की सूचना चीनी लोक गणतन्त्र को उसकी राय जानने के निमित्त दे दी गयी थी। याददाश्त के आधार पर मैं कह रहा हूँ कि कुछ समय पूर्व हमें यह सूचित किया गया था कि 'उन पर सावधानी से विचार

किया जा रहा है।' मैं यह कह सकता हूँ कि अनेक अवसरों पर हम विभिन्न राष्ट्रों द्वारा जिनमें चीन भी शामिल है, धैर्य के साथ शान्ति-स्थापना की चेष्टा करते रहने के लिए प्रोत्साहित किये गये। हमारा यह इरादा नहीं रहा कि जहाँ हमारी पूछ न हो, वहाँ भी हम जायँ। यह सत्य है कि चीन सरकार ने हमसे सहयोग करने का वादा नहीं किया लेकिन यह भी झूठ नहीं है कि उसने ऐसा करने से इनकार भी नहीं किया। हमने यह महसूस किया कि किसी प्रकार की आपत्ति के बिना हम अपने प्रयास में आगे बढ़ सकते हैं। यह गलत निर्णय हो सकता है लेकिन फिर भी हमने काफी प्रगति की। जिन सिद्धान्तों को हमने निर्धारित किया उनमें और प्रस्ताव में कोई बड़ा अन्तर न रहा; फिर भी सम्बन्धित देशों के पास हमने उसे भेजा। प्रस्ताव को पेश किये कुछ दिन बीत चुके हैं। सदन को याद होगा, पहली प्रतिक्रिया यह हुई कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने इसमें असहमति प्रकट की और तत्काल इसे अस्वीकार कर दिया। तब हमें यह ज्ञात न था कि रूस और चीन की प्रतिक्रिया क्या होगी। अन्त में उन्होंने हमें सूचना दी कि हम इसे स्वीकार नहीं कर सकते। कुछ लोगों की राय में इस पर हमें प्रस्ताव वापस ले लेना चाहिए था। यह सत्य है कि केवल किसी प्रस्ताव को स्वीकार करने से ही कुछ हो नहीं जाता, यदि लक्ष्य समझौता करना न हो। यह गलत किया। लेकिन दूसरी ओर बहुत से विकल्प भी न थे। संयुक्त राष्ट्रसंघ में हमारे द्वारा प्रस्ताव प्रस्तुत किये जाने से पूर्व बहुत से दूसरे लोगों का रुख आक्रमणात्मक रहा और निस्सन्देह उन्होंने स्थिति अधिक खराब कर दी होती। यदि ऐसा अवसर आता तो हम उनसे सहमति न प्रकट करते और हमारा मत उनके विरुद्ध होता। रूस या पूर्वी यूरोप के किसी अन्य राष्ट्र द्वारा प्रस्तावित प्रस्ताव में तत्काल युद्ध-विराम पर जोर दिया गया था। हमने युद्ध-विराम का स्वागत ही किया होता लेकिन स्पष्ट था कि यह प्रस्ताव स्वीकार न होगा। अनेक राष्ट्रों ने यह महसूस किया कि पूरे एक वर्ष की बहस के बाद और युद्ध के दबाव के बावजूद बन्दियों-सम्बन्धी मामला तय नहीं हुआ तो युद्ध-विराम के बाद भी यह तय न होगा। इसलिए उन्होंने वार्ता तब तक जारी रखने के कार्य को तरजीह दी जब तक सभी सम्बन्धित देशों के सन्तोष के अनुकूल अन्तिम रूप से निर्णय न हो जाय।

जहाँ तक हमारे प्रस्ताव का सम्बन्ध था, यह कठिन कार्य था। इसका व्यापक रूप से समर्थन हुआ लेकिन दुर्भाग्यवश कुछ प्रमुख सम्बन्धित देश इससे सहमत न हुए।"[1]

संयुक्त राष्ट्रसंघ में भारत द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले प्रस्ताव के सम्बन्ध में जो भाव नेहरूजी ने फरवरी, १९५३ के में व्यक्त किया था, अगले दो मास के अन्दर ही उनकी यथार्थता भी सिद्ध हो गयी और आगे चल कर प्रायः सभी राष्ट्रों ने जिनमें रूस भी शामिल था, मुक्त कण्ठ से भारत के प्रयास की सराहना की। भारत स्थित सोवियत राजदूत (सितम्बर, १९५३) श्री ईवान ए० नेनेदिक्तोवने मास्को लौट कर ३ अक्तूबर, १९५३ को कहा था—'कोरिया का युद्ध समाप्त करने में भारत सरकार ने बहुत महत्त्वपूर्ण भाग लिया है। यह असंदिग्ध है। एशिया में शान्तिपूर्ण निपटारे की कार्रवाई में भारत का जो भाग हो सकता है, उसके महत्व को नजर अन्दाज करना कठिन है।"

विराम-सन्धि के सम्बन्ध में पानमुनजान में चलने वाली वार्ता अन्ततः अप्रैल, १९५३ में सफल होती दिखाई दी। बीमार और घायल बन्दियों की अदला-बदली के समझौते पर दोनों पक्षों ने ११ अप्रैल, १९५३ को हस्ताक्षर कर दिये। इसके फलस्वरूप शेष बातों के सम्बन्ध में समझौता होने की आशा कुछ प्रबल हुई लेकिन शीघ्र ही गुटबन्दी-जन्य अन्तर्राष्ट्रीय तिकड़मबाजी के फल-स्वरूप पुनः निराशा के बादल मँडराते नजर आने लगे।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की ओर से विराम-सन्धि वार्ता में भाग लेने वाले प्रमुख अधिकारी लेफ्टिनेण्ट जेनरल विलियम हैरीसन ने यह प्रस्ताव रखा कि विराम सन्धि समझौते के अन्तर्गत अपने देश में लौटने से इनकार करने वाले बन्दियों के निष्पक्ष संरक्षक के रूप में पाकिस्तान नियुक्त किया जाय (४ मई, १९५३)। निष्पक्ष संरक्षक के रूप में पाकिस्तान की नियुक्ति के प्रस्ताव को कम्युनिस्ट प्रतिनिधियों ने न तो स्वीकार किया, न अस्वीकार। वार्ता दूसरे दिन के लिए स्थगित हो गयी। इसके पश्चात् ही घटनाओं की गति में ऐसा

---

१. पार्लिमेण्ट के समक्ष राष्ट्रपति के भाषण पर हुई बहस में नेहरूजी का भाषण—१७ फरवरी, १९५३।

परिवर्तन हुआ कि रूस और चीन तो भारत की ओर झुक गये किन्तु अमेरिका उससे खिंच गया। यह भारत और चीन के पारस्परिक सम्बन्ध का महत्त्वपूर्ण अध्याय तो है ही, साथ ही भारत की विकासशील परराष्ट्र नीति का भी परिचायक है।

पाकिस्तान को संरक्षक-राष्ट्र बनाने के प्रस्ताव का यद्यपि कम्युनिस्ट प्रतिनिधियों ने स्पष्टतः प्रतिवाद नहीं किया किन्तु प्रकारान्तर से किया उन्होंने यही। ६ मई, १९५३ को प्रमुख कम्युनिष्ट प्रतिनिधि जेनरल नामइल ने लेफ्टिनेण्ट जेनरल विलियम हैरिसन के प्रस्ताव के मुकाबले में अपना एक अष्ट सूत्रीय प्रस्ताव उपस्थित कर दिया। इसकी प्रतिक्रिया भी कम दिलचस्पी नहीं थी। इसके सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्र-संघ के सदर कार्यालय से प्रेस्ट ट्रस्ट आफ इण्डिया के संवाददाता द्वारा प्रेसित समाचार में कहा गया था—"अष्टसूत्रीय कम्युनिस्ट प्रस्ताव के अध्ययन की तत्काल यहाँ यह प्रतिक्रिया हुई कि यह संयुक्त राष्ट्र-संघ की साधारण सभा द्वारा ३ दिसम्बर, १९५२ को स्वीकृत भारतीय प्रस्ताव के सदृश ही है। इस प्रस्ताव के कई अंश अक्षरशः भारतीय प्रस्ताव से ले लिए गये हैं।" अस्तु, वार्ता का क्रम जारी रहा और अन्त में ८ जून, १९५३ को बंदियों की अदला-बदली के लिए तटस्थ राष्ट्र बंदी प्रत्यर्पण आयोग की नियुक्ति के सम्बन्ध में समझौता हो गया। इस समझौते के अनुसार भारत को जो दायित्व सौंपा गया, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों पक्षों का विश्वास अर्जित करने में उसे अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। समझौते में यह स्वीकार किया गया कि 'तटस्थ राष्ट्र बंदी प्रत्यर्पण आयोग में भारत, स्वीडन, स्वीटजरलैण्ड, पोलैण्ड और चेकोस्लोवाकिया का एक-एक प्रतिनिधि रहेगा। शान्ति बनाये रखने के लिए केवल भारत ही कोरिया में अपने सैनिक नियुक्त करेगा और आयोग का अध्यक्ष भी वही होगा।' इस दायित्व का निर्वाह भारत ने जिस प्रकार किया, वह इतिहास की अभूतपूर्व घटना है और यथास्थान उसका उल्लेख किया जायगा। यहाँ पहले यह बताना आवश्यक है कि उपर्युक्त विकट प्रश्न पर समझौता होने से शान्ति-स्थापना की

१. अमृत बाजार पत्रिका' (अंग्रेजी दैनिक-इलाहाबाद संस्करण) ६ मई, १९५३।

आशा शत-प्रतिशत दृढ़ हो गयी और लगभग डेढ़ माह बाद वह फलवती भी हो गयी। २७ जुलाई, १९५३ को संयुक्त राष्ट्रसंघ की ओर से जेनरल विलियम हैरिसन तथा कम्युनिस्टों की ओर से जेनरल नामइल ने पानमुनजान में ०९–३५ बजे (भारतीय समय) विराम सन्धि समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये। इस समझौते के अनुसार ही यह तय किया गया कि कोरिया की समस्या को अन्तिम रूप में हल करने के लिए सम्बन्धित देशों का राजनीतिक सम्मेलन बुलाया जाय। जब यह निश्चित करने का समय उपस्थित हुआ कि राजनीतिक सम्मेलन में कौन-कौन से देश भाग लें, तब भारत पुनः एक बार और सामने आ गया लेकिन विभिन्न परिस्थितियों में। इस सम्बन्ध में होने वाली वार्ता में रूस और चीनी गणराज्य ने इस बात की पूरी चेष्टा की कि भारत को भी राजनीतिक सम्मेलन में आमन्त्रित किया जाय लेकिन अमेरिका ने किसी की एक न चलने दी। सर्व प्रथम संयुक्त राष्ट्रसंघ में अमेरिका के प्रमुख प्रतिनिधि श्री हेनरी कैबेट लाज ने राजनीतिक सम्मेलन में भारत और रूस को शामिल किये जाने के सुझाव का विरोध किया। अमेरिका की इस नीति की भर्त्सना 'न्यूयार्क पोस्ट' ऐसे पत्र को भी करनी पड़ी। उसने इसकी टीका करते हुए लिखा था कि "कोई भी, जिसका होश दुरुस्त हो, इस बात को स्वीकार नहीं कर सकता कि कोरिया की घटनाओं से भारत और रूस का सम्बन्ध नहीं है।" एक ओर यह स्थिति थी और दूसरी ओर रूस, भारत के पक्ष में प्रस्ताव पेश कर रहा था। संयुक्त राष्ट्रसंघ की राजनीतिक समिति में १८ अगस्त, १९५३ को सोवियत यूनियन की ओर से उसके प्रतिनिधि श्री विशिंस्की ने यह प्रस्ताव प्रस्तुत किया था कि कोरियाई सम्मेलन में अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, सोवियत यूनियन, कम्युनिष्ट चीन, भारत, पोलैण्ड, स्वीडन, बर्मा, उत्तरी कोरिया और दक्षिणी कोरिया भाग लें।" संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने भारत को शामिल करने का विरोध करने का निर्णय किया। उसके इस निर्णय की ब्रिटेन और पेरिस तक में कड़ी टीका की गयी। पश्चिमी एशिया के उन देशों ने भी जो स्पष्टतः अमेरिका के प्रभाव में थे, इस पर खेद प्रकट किया। २५ अगस्त, १९५३ को राजनीतिक समिति में होने वाली बहस में भाग लेते

हुए इराक के प्रतिनिधि श्री अवानी खलीदी ने कहा था कि 'भारत की उपस्थिति से सफलता मिलने की आशा बढ़ जायगी।" अन्य अनेक राष्ट्रों ने भी भारत को सम्मेलन में शामिल करने का समर्थन किया। शान्ति की नीति के समर्थक भारत ने अमेरिका के हठ को देखकर और यह देखकर कि पाकिस्तान भी उसका विरोध कर रहा है, स्वयं मैदान से हट जाना उचित समझा। २८ अगस्त, १९५३ को अप्रत्याशित रूप में उसने अपना नाम वापस लेकर इस विवाद को समाप्त कर दिया और प्रत्यक्ष रूप से अन्तिम रूप में शान्ति-वार्ता का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

अमेरिका द्वारा भारत के विरोध का कारण उसके परराष्ट्र मन्त्री श्री डलेस के शब्दों में यह था -'कोरिया में अन्य संयुक्त राष्ट्रों का साथ न देने का मूल्य भारत को इस रूप में चुकाना पड़ा कि वह कोरियाई राजनीतिक सम्मेलन में शामिल नहीं किया गया।" अस्तु, अमेरिका का रुख यद्यपि प्रतिशोधात्मक था, तथापि भारत ने इस पर ध्यान नहीं दिया और उसने अपना यह मूलभूत मन्तव्य नहीं बदला कि 'चीनी लोकगणतंत्र से समझौता किये बिना कोरिया की समस्या हल नहीं हो सकती।'

कोरियाई राजनीतिक सम्मेलन के सम्बन्ध में राष्ट्रसंघ में कोई निर्णय न हो सका। अन्ततः फरवरी, १९५४ में चार बड़े राष्ट्रों—अमेरिका, रूस, ब्रिटेन और फ्रांस के विदेश मन्त्रियों का सम्मेलन बर्लिन में हुआ और इसके निर्णयानुसार कोरिया तथा हिन्दचीन की समस्याओं पर पृथक्-पृथक् से विचार करने के लिए, जनेवा में २६ अप्रैल १९५४ से २१ जुलाई, १९५४ तक संबन्धित राष्ट्रों का सम्मेलन हुआ। इसके फलस्वरूप हिन्दचीन में तो युद्ध रुक गया किन्तु कोरिया के मामले में कोई प्रगति नहीं हुई। भारत को इसमें शामिल होने के लिए आमन्त्रित नहीं किया गया था किन्तु गैररस्मी तरीके से भारत के प्रतिनिधि श्री कृष्णामेनन ने दोनों सम्मेलनों को सफल बनाने के लिए जो प्रचण्ड प्रयास किया, इतिहास में उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसके फलस्वरूप भारत और चीन एक दूसरे के और अधिक निकट आ गये। चीन के प्रधान मन्त्री और परराष्ट्र मन्त्री श्री चाओ एन लाई ने ११ अगस्त, १९५४ को चीन की केन्द्रीय लोक सरकार की परिषद् के ३३वें अधिवेशन में वैदेशिक मामलों की ओर

रिपोर्ट पेश की थी, उसमें भारत के उपर्युक्त प्रयास को सराहना की गयी थी। रिपोर्ट में कहा गया था कि 'कोलम्बो शक्तियों ने, खास तौर पर भारत ने हिन्द-चीन विराम-सन्धि सम्पन्न कराने के लिए जो कोशिशें की, उसका जनेवा सम्मेलन की सफलता में काफी योग रहा है।"

कोरिया में शांति स्थापित कराने तथा चीन के महत्त्व को बराबर प्रकाश में लाते रहने के भारत के प्रयास की कहानी अधूरी रह जायगी यदि कोरिया में तटस्थ राष्ट्र बंदी प्रत्यर्पण आयोग के अध्यक्ष के रूप में भारत के सैनिकों के महत्त्वपूर्ण कार्य का उल्लेख न किया जायगा। २७ जुलाई, १९५३ के समझौते के अनुसार भारत ने कोरिया में संरक्षक सेना भेजने का उत्तरदायित्व वहन करना स्वीकार कर लिया था। ५ अगस्त, १९५३ को उसने अपना अग्रिम दस्ता कोरिया में भेजा। उस दूरस्थ देश में जाकर भारतीय सैनिकों ने समझौते का पालन कराने के लिए पूर्ण निष्पक्षता के साथ जो कार्य किया, इतिहास में उसकी मिसाल नहीं मिल सकती। उसने जहाँ एक ओर अमेरिकी सेना के हथकंडों का पर्दाफाश करने में हिचक नहीं प्रकट की, वहीं दूसरी ओर कम्युनिस्ट पक्ष का अनुचित दबाव भी नहीं माना। बाद में सभी शान्तिप्रिय राष्ट्रों ने मुक्त कण्ठ से यह स्वीकार किया कि तटस्थ-राष्ट्र आयोग और संरक्षक सेना—दोनों के भारतीय अफसरों और सैनिकों ने निस्पक्षता के साथ अपने कर्तव्य का निर्वाह किया। इस कर्तव्य का निर्वाह करते समय भारत को दक्षिणी कोरिया की खरी-खोटी खूब सुननी पड़ी। दक्षिणी कोरिया ने तो भारतीय सेना के विरुद्ध बल-प्रयोग तक करने की धमकी दे डाली। समझौते की शर्तों के विरुद्ध उसने बहुत से सैनिकों को छोड़ कर हंगामा भी खड़ा कर दिया। भारत ने धैर्य के साथ सभी संकटों और धमकियों का सामना किया। 'वह पहले से ही जानता था कि कोरिया में उसका काम आसान नहीं है। संरक्षक सेना के पहले दस्ते के रवाना होने के समय ही पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने यह बात स्पष्ट कर दी थी। उन्होंने कहा था कि यद्यपि यह भारत और

१, चीन के नयी दिल्ली-स्थित दूतावास द्वारा प्रकाशित समाचार बुलेटिन-संख्या ३५—१९५४ पृ० सं० ७।

भारतीय सेना के लिए सम्मान की बात है, तथापि इसमें जिम्मेदारी भी बहुत अधिक है।'

"सितम्बर, १६५४ के प्रारम्भ में, कोरिया के छोटे से असैन्यीकृत क्षेत्र में पहुँचते ही संरक्षक सेना अपने काम में जुट गयी। शीघ्र ही आरम्भिक व्यवस्था पूरी कर डाली गयी। हिन्द नगर (तटस्थ राष्ट्र बन्दी प्रत्यर्पण आयोग का सदर मुकाम) और नयी दिल्ली के बीच बेतार के तार का सम्बन्ध जोड़ लिया गया, स्थानीय टेलीफोन व्यवस्था पूरी कर डाली गयी और एक क्षेत्रवर्ती अस्पताल खोल दिया गया। २४ सितम्बर १६५४ तक उन्होंने युद्ध-बंदियों को अपनी देख-रेख में ले लिया। कुल २२, ५६२ उत्तरी कोरियाई और चीनी, ३५६ दक्षिण कोरियाई और ब्रिटिश बंदी थे।"

"इधर, आयोग ने कार्य-प्रणाली के नियम आदि भी बना लिए और युद्ध बंदियों के नाम एक संदेश में उन्हें यह विश्वास दिलाया कि वे निर्भर होकर वापस जाने के बारे में अपनी इच्छा व्यक्त कर सकते हैं। आयोग इस बात का ध्यान रखेगा कि इस काम में उन पर किसी प्रकार का दबाव न डाला जाय। उन्हें यह भी बताया गया कि २६ दिसम्बर को बंदियों के देशों के प्रतिनिधि उन्हें उनके अधिकारों के विषय में समझायेंगे तथा वापस देश जाने के विषय में जो बंदी ६० दिनों तक अपना निर्णय न बतायेंगे, वे उसके बाद और ३० दिनों तक संरक्षक सेना के अधीन रहेंगे। इन ३० दिनों में राजनीतिक सम्मेलन बन्दियों के भविष्य के विषय में निर्णय करने का प्रयत्न करेगा।"

"जिस दिन बंदियों को समझाने का काम शुरू होनेवाला था, उसके एक दिन पहले ही संरक्षक सेना के अफसरों और जवानों के धैर्य तथा उनकी चतुरता की परीक्षा का समय आ गया। चीनी युद्ध-बंदी, मेजर एम० एस० ग्रेवाल को जबरदस्ती घसीट कर अपने अहाते में ले गये और यह कहने लगे कि जब तक वापस भेजे गये उनके साथियों को वापस न बुलाया जायगा, तब तक मेजर ग्रेवाल न छोड़े जायँगे। जब बंदी मेजर ग्रेवाल को ले जा रहे थे, उस समय लांस नायक ठाकुरसिंह उनकी मदद के लिए अपनी जान को खतरे में डाल कर दौड़े हुए शिविर के अन्दर गये। (इस वीरता के लिए उन्हें अशोक चक्र से विभूषित किया गया है)। कुछ बंदियों ने मेजर ग्रेवाल को भीतर ही

रोक रखा था और शेष, धमकी भरे और हिंसात्मक ढङ्ग से बाहर ही प्रदर्शन कर रहे थे। संरक्षक सेना के सेनापति मेजर जेनरल थोराट के चतुरता पूर्ण और शान्त व्यवहार से स्थिति काबू में आयी और मेजर ग्रेवाल को बंदियों ने वापस लौटाया।" इस प्रकार के और भी अवसर आये लेकिन तटस्थ राष्ट्र आयोग के भारतीय अध्यक्ष लेफ्टिनेण्ट जनरल के० एस० थिमैय्या तथा उनके साथियों ने धैर्य से सबका सामना किया और भारत की प्रतिष्ठा पर किसी प्रकार भी आँच न आने दी। यद्यपि उपद्रव कराने की चेष्टा काफी की गयी—यहाँ तक कि राशन में छिपा कर वायरलेस सेट तथा शस्त्रास्त्र तक संयुक्त राष्ट्रीय सैनिकों के पास भेजे गये, लेकिन भारतीय सैनिकों की सतर्कता और दृढ़ता से शान्ति भंग न होने पायी और भारत ने अपना काम पूरा किया।

तिब्बत की समस्या

कोरिया के युद्ध से भारत का कोई सीधा सम्बन्ध न था। इस मामले में भारत के प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल की दिलचस्पी का आधार उनका यह आदर्श ही रहा कि 'किसी राष्ट्र के आन्तरिक मामले में बाह्य राष्ट्र को हस्तक्षेप न करना चाहिए और मानवता की रक्षा एवं उसके विकास के लिए यह आवश्यक है कि मतभेदों का निपटारा आपसी बातचीत द्वारा किया जाय—युद्ध से नहीं।' संयोगवश कोरियाई युद्ध का आरम्भ होने के चार मास बाद ही ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी जिससे भारत के स्वार्थ का सीधा सम्बन्ध था। यह स्थिति चीन की नीति के कारण उत्पन्न हुई। इस मामले को पं० जवाहरलाल नेहरू ने जिस बुद्धिमत्ता से सुलझाया उसके कारण भारत-चीन की मैत्री, बावजूद इस बात के और भी दृढ़ हुई, कि भारत ने प्रत्यक्षतः चीन की उपर्युक्त नीति को असंगत बताया था।

७ अक्तूबर, सन् १९५० को चीन ने 'तिब्बत को साम्राज्यवाद के चंगुल से मुक्त करने के लिए अपनी सेना वहाँ भेजी।'[१] भारत में इसकी व्यापक प्रतिक्रिया हुई। यह स्वाभाविक भी था; क्योंकि तिब्बत में भारत के व्यापार को काफी लम्बे अरसे से संरक्षण प्राप्त रहा है। उसका एक प्रतिनिधि भी तिब्बत में रहता था। भारत की चिन्ता का दूसरा कारण था—तिब्बत की भौगोलिक अवस्थिति। यह कश्मीर, नेपाल और भूटान के बगल से होता हुआ चीन की सीमा तक विस्तृत है और दक्षिण में हिमालय की तथा उत्तर में कुनलुन की

१. चीन के साप्ताहिक पत्र 'पिपुल्स चाइना' का पूरक—खंड ३, संख्या १२, जून १६, १९५१, पृ० सं० १२।

पहाड़ियों से घिरा है। यहाँ व्यापक राजनीतिक उथल-पुथल होने पर उसका प्रभाव भारत पर भी पड़ सकता है। इन्हीं कारणों का यह परिणाम था कि चीनी सेना के अभियान के साथ-साथ भारत में इसके सम्बन्ध में अनेक प्रश्न खड़े हो गये। तरह-तरह के विचार प्रकट किये जाने लगे। भारत की सुरक्षा की समस्या उपस्थित की गयी। संसद में नेहरू जी से इस सम्बन्ध में अनेक प्रश्न भी पूछे गये। यह समय था जब भारत और चीन में तनाव उत्पन्न हो सकता था लेकिन चीन के सम्बन्ध में नेहरूजी के वास्तविक दृष्टिकोण के कारण स्थिति उलझ न पायी। नेहरूजी इस बात को मानते थे कि तिब्बत पर चीन का ही प्रभुत्व माना जाता रहा है। यह ऐतिहासिक तथ्य है। यह बात दूसरी है कि यह अनेक उलझनों से घिरा हुआ है। सन् १८७५ से लेकर सन् १९१८ तक के तिब्बत के इतिहास में अनेक बार यह तथ्य दोहराया गया है। इसमें शक नहीं है कि दलाई लामा ने तिब्बत पर चीन के राजनीतिक प्रभुत्व से अपना पीछा छुड़ाने की कोशिश बार-बार की किन्तु उन्हें सफलता कभी नहीं मिली। इसमें भी शक नहीं है कि इस खुराफात के पीछे ब्रिटेन का बहुत हाथ रहा लेकिन उसे भी सफलता नहीं मिली। सन् १९०६ में ब्रिटेन और चीन में जो समझौता (पीकिंग समझौता) हुआ था, उसमें ब्रिटेन ने तिब्बत पर चीन की प्रभुता स्वीकार की थी। इतिहास यह बताता है कि लार्ड कर्जन (भारत में गवरनर जनरल) के कार्यकाल तक तिब्बत पर चीन की प्रभुता बिना किसी मीनमेख के स्वीकार की जाती रही। जहाँ तक सीमा का सवाल है, उसके सम्बन्ध में भी सन् १८९० में भारत और चीन में होनेवाले अन्तराष्ट्रीय समझौते में यह स्वीकार किया गया था कि तिब्बत चीन की प्रभुसत्ता के ही अन्तर्गत है। सन् १९०६ की ब्रिटेन-चीन सन्धि के बाद सन् १९०७ में ब्रिटेन और रूस में एक समझौता हुआ था। जिसमें उपर्युक्त तथ्य दोहराया गया था। सन् १९१४ के महायुद्ध का लाभ उठाकर ब्रिटेन ने पुनः एक बार तिब्बत पर कब्जा करना चाहा लेकिन उसे सफलता नहीं मिली थी। तिब्बत और ब्रिटेन ने इस दौरान में जिस समझौते पर हस्ताक्षर किये उसका विरोध करने के लिए उस समय भी चीन ने अपनी सेनाएँ तिब्बत में भेजी थी लेकिन आन्तरिक गड़बड़ी के कारण चीनी सेना का अभियान असफल रहा और तिब्बत ने सफलतापूर्वक चीन का सामना किया।

तिब्बत पर चीनी लोक गणतन्त्र की सेना की चढ़ाई के समय नेहरूजी ने वस्तुस्थिति की उपेक्षा नहीं की। चीनी सेना के अभियान से पूर्व की घटनाएँ ऐसी थीं, जिनकी उपेक्षा चीन भी नहीं कर सकता था और यह बात नेहरूजी से छिपी न थी। दलाई लामा की सरकार ने साम्राज्यवादी देशों के इशारे पर ८ जुलाई, सन् १९४९ को चीन से अपना सम्बन्ध विच्छेद करने की घोषणा की थी। इसके अनुसार तिब्बत-स्थित चीनी अधिकारियों को तिब्बत छोड़ने की आज्ञा भी दे दी गयी थी। दरअसल तिब्बत अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक कशमकश का अखाड़ा बन रहा था। यहाँ की दलाई लामा सरकार को अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता तक प्रदान करने की तैयारी कर ली गयी थी। अजीब हालत थी और इस हालत का मुकाबला चीन को करना था। उसने अपने तरीके से यह किया भी। नेहरूजी ने यह तरीका पसन्द नहीं किया और अपनी राय से चीन सरकार को अवगत करा दिया। तिब्बत पर चीनी सेना के अभियान के लगभग दो मास बाद ६ दिसम्बर, सन् १९५० को भारतीय लोक सभा में परराष्ट्र-नीति पर बहस प्रारम्भ करते हुए नेहरूजी ने तिब्बत के सम्बन्ध में जो कुछ कहा था, उसमें उपर्युक्त विरोध का उल्लेख भी शामिल रहा। नेहरूजी ने कहा था—"तिब्बत में चीनी सेना के अभियान के सम्बन्ध में इससे पूर्व प्रातः कुछ प्रश्न किए गये थे।......जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है, तिब्बत का मामला बहुत साधारण है। जब चीनी लोक गणतंत्र की सरकार ने 'तिब्बत की मुक्ति' के सम्बन्ध में अपना विचार प्रकट करना प्रारम्भ किया, तभी भारत की ओर से चीन-स्थित उसके राजदूत ने चीन सरकार को भारत के मत से अवगत करा दिया था। हमने अपनी यह हार्दिक आशा प्रकट की थी कि चीन और तिब्बत की शांतिपूर्वक समस्या हल कर लेंगे। हमने यह भी स्पष्ट कर दिया कि तिब्बत के संबंध में हमारी कोई क्षेत्रीय या राजनीतिक अभिलाषा नहीं है। उससे हमारा व्यापारिक और सांस्कृतिक संबंध है। हमने चीन को बताया कि इन संबंधों को कायम रखने की हमारी इच्छा स्वाभाविक है, क्योंकि इससे न तो चीन के मार्ग में अड़चन पड़ती है, न तिब्बत के। हमने अपनी यह इच्छा भी उससे नहीं छिपायी कि तिब्बत का स्वायत्त-शासन का अधिकार जिसका उपभोग वह कम से कम पिछले चालीस वर्षों से कर रहा है, हम चाहते हैं, कायम रहे। हमने ये सभी बातें मैत्री-भाव

से कहीं। अपने उत्तर में चीन सरकार ने हमेशा यही कहा कि 'हम शांतिपूर्वक समस्या को हल करना चाहेंगे' लेकिन उसने यह भी नहीं छिपाया कि प्रत्येक दशा में चीनी सेना का 'मुक्ति अभियान' शुरू होगा। वह तिब्बत को किससे मुक्त करना चाहती थी, यह बिलकुल साफ न था। उसने हमें बताया कि शांतिपूर्ण हल ढूँढा जायगा लेकिन इसके सम्बन्ध में उसने कोई आश्वासन हमें नहीं दिया। एक ओर तो वह कहती थी हम शांतिपूर्ण समझौते के लिए तैयार हैं और दूसरी ओर बार-बार 'तिब्बत की मुक्ति' की भी बात करती थी।"

"हमें यह विश्वास हो गया था कि समस्या शांतिपूर्ण ढंग से आपसी वार्ता द्वारा हल कर ली जायगी। जब हमें चीनी-सेना के अभियान का समाचार मिला, हमारे दिल पर धक्का लगा। सच तो यह है कि चीन और तिब्बत के बीच युद्ध की बात कोई मुश्किल से सोच सकता है। तिब्बत युद्ध करने की स्थिति में नहीं है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि तिब्बत से चीन को कोई खतरा नहीं है। कहा जाता है कि अन्य देश तिब्बत में षड्यन्त्र रच सकते हैं। मैं इसके सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकता, क्योंकि मैं कुछ जानता ही नहीं हूँ। फिर भी यह निश्चित है कि तत्काल कोई संकट न था। आधुनिक युद्ध में हिंसा को शायद प्रतिपादित किया जा सकता है लेकिन इसका सहारा तब तक न लिया जाना चाहिए, जब तक सभी रास्ते बंद न हो जाँय। यही कारण है कि चीन की कार्रवाई से हमें आश्चर्य हुआ।"[१]

चीन से तिब्बत का मुकाबला ही क्या। शीघ्र ही मामला समाप्त हो गया। पीकिंग में २३ मई, सन् १९५१ को तिब्बत की स्थानीय सरकार और चीनी लोक गणतन्त्र के प्रतिनिधियों ने एक समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये। इतने पर भी भारत में इसकी चर्चा समाप्त नहीं हुई। यह बराबर बनी रही और लम्बे अर्से तक बनी रही। सीमान्त की सुरक्षा का प्रश्न बराबर उठाया जाता रहा। सन् १९५० से लेकर सन् १९५४ तक अनेक अवसरों पर लोक-सभा में परराष्ट्र-नीति पर होने वाली बहस के विवरण से यह स्पष्ट है। बहुत दिन नहीं हुए। मार्च, १९५४ में सुरक्षा की समस्या की चर्चा करते हुए संसद में अनेक बातें

१. 'जवाहर लाल नेहरू स्पीचेज'—१९४९-१९५३ पृ०सं० १८७—१८८।

कही गयी थीं। इनमें तिब्बत के सम्बन्ध में भी कहा गया था। नेहरूजी ने जो उत्तर दिया था, वह चीन के सम्बन्ध में उनके दृष्टिकोण को साफ करने में काफी सहायक है। २५ मार्च, सन् १९५४ को भारत की लोक-सभा में नेहरूजी ने कहा था—"शायद कल हमारे कुछ दोस्तों ने हमारी सरहद का जिक्र किया था, खास कर उस सरहद का जो तिब्बत की तरफ है और जो मैकमोहन लाइन कहलाती है। मुझे मालूम नहीं कि उनके दिल में इस बारे में क्यों शक पैदा हुआ था, क्योंकि मैकमोहन लाइन तो एक माकूल चीज है। वह कोई हवाई चीज नहीं है और इस वक्त हिन्दुस्तान की सरहद है जिस पर हमारे काफी 'चेक पोष्ट' वगैरह कायम है और जहाँ तक हमारा ताल्लुक है, यह सरहद है और रहेगी। इस पर किसी मुल्क से बहस की बात नहीं है, न इसके बारे में हम किसी से बहस करने वाले हैं। तो फिर यह शक किसी के दिमाग में उठने के कोई माने नहीं है।"

यह कम महत्त्व की बात नहीं है कि तिब्बत के मामले में ही चीन से भारत का वह समझौता हुआ जो 'पंचशील' सिद्धान्तों की आधार-शिला है और जिसकी ओर सारे विश्व की आँखें लगी है। इस समझौते से भी यह स्पष्ट है कि चीन के बारे में अपनी दृष्टि के कारण नेहरूजी को धोखा नहीं हुआ। २९ अप्रैल, सन् १९५४ को चीन की राजधानी पेकिंग में तिब्बत प्रदेश में व्यापार और संसर्ग के विषय में भारत और चीन के बीच हुए समझौते[1] पर भारत की ओर से उसके तत्कालीन पूर्णाधिकारी राजदूत श्री नेडियम राघवन् तथा चीन की ओर से उसके उप-विदेश मन्त्री श्री चांग-हान् फू ने हस्ताक्षर किये थे। इस समझौते के प्राक्कथन में उन्हीं पाँच सिद्धान्तों को समझौते का आधार माना गया है जिनकी घोषणा २८ जून, सन् १९५४ को भारत के परराष्ट्र-मन्त्री नेहरूजी तथा चीन के परराष्ट्र-मन्त्री श्री चाओ एन लाई ने नयी दिल्ली में संयुक्त रूप से की तथा बाद में बर्मा और हिन्दएशिया तथा यूरोप के देश यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति मार्शल टीटो अन्य देशों ने जिन्हें अपनाने की घोषणा की। इस समझौते से स्पष्ट है कि तिब्बत में भारत के स्वार्थ को कहीं भी धक्का नहीं पहुँचा। इस समझौते के साथ दोनों देशों के प्रतिनिधियों ने एक दूसरे के नाम जो एक-सा

---

१. परिशिष्ट—१

पत्र लिखा था, उससे भी जाहिर है। इस पत्र का ऐतिहासिक महत्त्व है और इसका मुख्य अंश इस प्रकार है —

१—भारत सरकार खुशी से इस पत्र-व्यवहार की तिथि से छः मास के अन्दर उन फौजी रक्षा-दलों को पूर्णतः हटा लेगी जो इस समय चीन के तिब्बत प्रदेश में यातुङ्ग और ग्यांत्से में हैं। चीन की सरकार इस काम में सुविधाएँ और सहायता देगी।

२—भारत सरकार ने, चीन के तिब्बत प्रदेश में डाक, तार और पब्लिक टेलीफोन की जो व्यवस्थाएँ की हैं, उनको वह सामान सहित उचित मूल्य लेकर चीन सरकार के हवाले कर देगी। इस सम्बन्ध में आवश्यक कार्रवाई चीन में भारत के दूतावास और चीन सरकार के विदेश विभाग के बीच मजीद बात-चीत से तय की जायगी और यह बातचीत इस पत्र-व्यवहार के बाद फौरन शुरू हो जायगी।

३—भारत सरकार खुशी से चीन के तिब्बत प्रदेश में अपने बारह आराम घर उचित मूल्य लेकर चीन सरकार के हवाले कर देगी। इस सम्बन्ध में आवश्यक कार्रवाई चीन में भारत के दूतावास और चीन सरकार के विदेश विभाग के बीच मजीद बातचीत से तय की जायगी।.......चीन की सरकार इस बात को स्वीकार करती है कि ये घर आराम घरों के रूप में ही रखे जायँगे।

४—चीन की सरकार स्वीकार करती है कि चीन के तिब्बत प्रदेश में यातुंग और ग्यांत्से में भारत सरकार की व्यापारी एजेन्सियों के अहाते या चहारदीवारी के अन्दर जितने मकान हैं, वे सब भारत सरकार अपने ही पास रखेगी। भारत सरकार अपनी एजेंसियों के अहाते या चहारदीवारी के अन्दर की सब जमीन को चीन की तरफ से पट्टे पर रख सकती है। भारत सरकार स्वीकार करती है कि चीन सरकार की व्यापारी एजेंसियाँ कालिमपोङ्ग और कलकत्ते में अपने इस्तेमाल के लिए भारत सरकार की तरफ से जमीन पट्टे पर ले सकेंगी और उस पर मकान बना सकेंगी। चीन सरकार, गतोंक में भारतीय व्यापारी एजेंसी को मकान दिलाने में सब सम्भव सहायता देगी। भारत सरकार भी नयी दिल्ली में चीनी व्यापारी एजेंसी को मकान दिलाने में सब सम्भव सहा-यता देगी।

५—भारत सरकार खुशी से चीन सरकार को वह सब जमीन लौटा देगी जो यांतुग में भारत सरकार के इस्तेमाल या कब्जे में है, सिवा उस जमीन के जो यांतुग में भारत की व्यापारी एजेंसी के अहाते या चहारदीवारी के अन्दर हैं।

ऊपर वर्णित जमीनों पर जो भारत सरकार के इस्तेमाल या कब्जे में है और जिनको भारत सरकार लौटाने वाली हो, यदि भारत सरकार के गोदाम या मकान हैं या भारतीय व्यापारियों की दुकानें, गोदाम या मकान हैं और इसलिए इन जमीनों को पट्टे पर लेते रहने की जरूरत है, तो चीन सरकार स्वीकार करती है कि वह भारत सरकार या भारतीय व्यापारियों के साथ यथोचित इन जमीनों के उन हिस्सों को पट्टे पर उठाने के लिए इकरारनामे पर दस्तखत करेगी, जिन हिस्सों पर ऊपर वर्णित गोदाम, मकान या दूकानें हो या जो जमीन के हिस्से इन इमारतो से सम्बन्ध रखते हों।

६—दोनों तरफ के *व्यापारिक एजेंसट स्थानिक सरकार के* कानूनों और उपनियमों के अनुसार दीवानी या फौजदारी मामलों में ग्रस्त अपने देशवासियों से मिल सकेंगे।

७—दोनों तरफ के व्यापारिक एजेण्ट और व्यापारी पास-पड़ोस में लोगों को नौकर रख सकेंगे।

८—ग्यांत्से और यांतुग में भारतीय व्यापारी एजेंसियों के अस्पताल एजेंसी के लोगों की सेवा बदस्तूर करते रहेंगे।

९—प्रत्येक सरकार दूसरे देश के व्यापारियों और तीर्थयात्रियों की जान और सम्पत्ति की रक्षा करेगी।

१०—चीन सरकार स्वीकार करती है कि वह यथासम्भव, पुलनचुङ्ग (तकला कोट) से कांगरिंपोचे (कैलाश) और मवंत्सो (मानसरोवर) तक के रास्ते पर तीर्थ यात्रियों के इस्तेमाल के लिए आरामघर बनायेगी। भारत सरकार तीर्थ यात्रियों को सभी सम्भव सुविधाएँ भारत में देना स्वीकार करती है।

११—दोनों तरफ के व्यापारियों और तीर्थ यात्रियों को साधारण और उचित दर पर, यातायात के साधन किराये पर लेने की सुविधा दी जायगी।

१२—प्रत्येक पक्ष की तीनों व्यापारिक एजेंसियाँ बारह (१२) महीने काम कर सकती हैं।

१३—दोनों देशों के व्यापारी स्थानिक उपनियमों के अनुसार उन स्थानों में जो दूसरे देश के अधिकार में हों, मकान या गोदाम किराये पर ले सकते हैं।

१४—इकरारनामे के अनुच्छेद २ में जो स्थान निर्दिष्ट किये गये हैं, उन पर दोनों देशों के व्यापारी स्थानिक उपनियमों के अनुसार यथाक्रम व्यापार कर सकते हैं। और—

१५—दोनों देशों के व्यापारियों के बीच कर्ज या मुतालबे के झगड़ों को स्थानिक कानूनों और उपनियमों के अनुसार हाथ में लिया जायगा।

उपर्युक्त तथ्य से अवगत इतिहास के पाठकों को यह स्वीकार करना ही होगा कि चीन के सम्बन्ध में नेहरू जी का जो दृष्टिकोण रहा है, उसके फल-स्वरूप लगभग एक अरब की आबादी वाले एशिया को दो महान् देश न केवल एक-दूसरे के निकट आये किन्तु उन्होंने पारस्परिक समझौते द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ हल करने की व्यवहारिकता भी सिद्ध कर दी।

चाओ एन लाई की भारत-यात्रा

चीन से सम्बन्धित समस्याओं के प्रति नेहरूजी की दृष्टि से सिद्ध हो चुका है कि वह विश्व-शान्ति के लिए एवं विशेष रूप से एशिया में शान्ति तथा एशियाई देशों के विकास के लिए भारत-चीन मैत्री को बहुत आवश्यक समझते हैं। यही कारण है कि उन्होंने भारत-चीन मैत्री की दो हजार वर्ष पुरानी परम्परा को बनाये रखने की कोशिश बराबर की। इस सम्बन्ध में उनकी क्रियाशीलता का क्रमवार विवरण इससे पूर्व दिया जा चुका है। चीन के प्रधान मन्त्री एवं परराष्ट्र-मन्त्री श्री चाओ एन लाई की भारत-यात्रा इस शृंखला की ही महत्वपूर्ण कड़ी है। श्री चाओ एन लाई नेहरूजी के आमन्त्रण पर भारत आये थे और २५ जून, सन् १९५४ को नयी दिल्ली के हवाई अड्डे पर पहुँचे थे। यहाँ उनका जैसा शानदार स्वागत हुआ, इससे पूर्व ऐसा शानदार स्वागत भारत में किसी विदेशी अधिकारी और जन-नायक का नहीं हुआ था। इसमें सन्देह नहीं है कि चाओ की यात्रा से भारत-चीन मैत्री और दृढ़ हुई और इस ऐतिहासिक यात्रा की जबरदस्त प्रतिक्रिया अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी हुई।

श्री चाओ एन लाई जनेवा में होनेवाले कोरियाई सम्मेलन और हिन्द-चीन सम्मेलन में भाग लेने के बाद जनेवा से ही भारत आये थे। कोरियाई सम्मेलन को भारत की देन का उल्लेख तीसरे अध्याय में किया जा चुका है। श्री चाओ की भारत-यात्रा और इसके निरूपण में नेहरू जी के योगदान का महत्त्व समझने के लिए हिन्द-चीन सम्मेलन को नेहरू जी की देन का ज्ञान होना आवश्यक है।

जनेवा में हिन्द-चीन विषयक सम्मेलन आरम्भ होने से दो दिन पूर्व अर्थात् २४ अप्रैल, सन् १९५४ को नेहरूजी ने इस समस्या के समाधान के लिए अपने ठोस सुझाव उपस्थित किये थे। ये सुझाव नेहरू जी के उस ऐतिहासिक

भाषण में निहित हैं जो उन्होंने भारत की लोक सभा में इस दिन किया था।[१] यह आदि से अन्त तक महत्त्वपूर्ण सुझावों से भरा है और इसमें उल्लिखित बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्द-चीन की समस्या के सम्बन्ध में चीन और नेहरूजी की दृष्टियों में कोई विशेष अन्तर न था। कुछ हेरफेर के बाद चन्द दिनों के अन्दर कोलम्बो राष्ट्रों (भारत, लंका, पाकिस्तान, बर्मा और हिन्द-एशिया) ने भी नेहरूजी के हिन्द-चीन-सम्बन्धी सुझाव की पुष्टि कर दी थी। अन्ततः हिन्द-चीन के सम्बन्ध में जनेवा में जो समझौता हुआ, वह नेहरू जी द्वारा प्रस्तुत सुझावों के आधार पर आधारित नहीं है, यह कहने का साहस कोई नहीं कर सकता।

नेहरूजी द्वारा प्रस्तुत सुझाव इस प्रकार थेः—

१—शान्तिपूर्ण तथा पारस्परिक बातचीत का वातावरण बनाना है और शंका तथा धमकियों के वर्तमान वातावरण को दूर करना है। इस दिशा में भारत सरकार की सब सम्बद्ध देशों से अपील है कि वे धमकियां देना बन्द कर दें। युद्ध में भाग लेनेवाले पक्षों से भी यह अपील है कि वे युद्ध के वेग को न बढ़ाएँ।

२—युद्ध विराम के लिए भारत सरकार के सुझाव ये हैं :—

(क) हिन्दचीन विषयक वार्ता की कार्य-सूची में 'युद्ध-विराम' विषय को प्राथमिकता दी जाय।

(ख) युद्ध में वास्तविक रूप में भाग लेनेवाले पक्षों अर्थात् फ्रांस तथा तीनों साथी राज्यों और वियतमिन्ह का एक युद्ध-विराम समूह बनाया जाय।

३—सम्मेलन को यह निश्चय करना चाहिए और यह घोषणा करनी चाहिये कि इस झगड़े को निपटाने के लिए यह आवश्यक है कि फ्रांस की सरकार हिन्द-चीन को पूर्ण स्वतन्त्र करने का स्पष्ट वचन दे।

४—सम्मेलन द्वारा मुख्य रूप से सम्बद्ध दलों में सीधे बातचीत शुरू करायी जाय। स्वयं समझौते का कोई रास्ता निकालने के बजाय, सम्मेलन को मुख्य रूप से सम्बद्ध दलों से आपसी बातचीत करने की प्रार्थना करनी चाहिये और इसके लिए सम्मेलन सभी प्रकार की सहायता दे। इस प्रकार सीधी बातचीत से

१. परिशिष्ट—२

हिन्द-चीन की समस्या को उन प्रश्नोत्तर तक सीमित रखने में सहायता मिलेगी जिनका हिन्द-चीन से सीधा संबन्ध है। ये दल वही होंगे जो युद्ध-स्थगन में शामिल होंगे।

५—सम्मेलन द्वारा अमेरिका, रूस, ब्रिटेन और चीन में यह करार कराया जाय कि ये देश परोक्ष या अपरोक्ष रूप से सेना या युद्ध-सामग्री द्वारा युद्ध-रत दलों को सहायता न देंगे। संयुक्त राष्ट्रसंघ से यह प्रार्थना की जाय कि वह हिन्दचीन में अहस्तक्षेप का एक कनवेंसन बनाये जिसमें उपर्युक्त करार और इसको कार्यान्वित करने की व्यवस्था भी शामिल हो। अन्य राष्ट्रों से भी संयुक्त राष्ट्रसंघ इस कनवेंशन का पालन करने को कहे।

६—सम्मेलन की प्रगति की सूचना संयुक्त राष्ट्रसंघ को दी जाय। कनवेंशन के उपर्युक्त अनुच्छेत के अन्तर्गत, समझौते के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ का उपयोग किया जाय।

नेहरू जी के इन सुझावों की व्यापक प्रतिक्रिया हुई। फ्रांस, ब्रिटेन, रूस और चीन आदि राष्ट्र इनसे प्रभावित भी हुए। सच तो यह है कि इस मामले में ब्रिटेन ने खुलेआम अमेरिका के मुकाबले में भारत के सुझावो कों वरीयता दी थी। भारत के प्रयास से जिस हद तक चीन प्रभावित हुआ, उसका उल्लेख श्री चाओ एन लाई ने अपने स्वागत में नेहरू जी द्वारा नयी दिल्ली में आयोजित समारोह के प्रति आभार व्यक्त करते हुए स्वयं यह कहकर किया था (२६ जून, १६५४) कि "हिन्दचीन की लड़ाई को बन्द कराने की कोशिश में भारत बराबर दिलचस्पी लेता रहा है। जनेवा सम्मेलन में, हिन्दचीन में फिर से शांति स्थापित करने के लिए जो प्रयत्न किये गये हैं, उनका उसने दृढ़ता से समर्थन किया है।"

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस समय श्री चाओ एन लाई भारत में आये, उस समय तक उनके मन में यह धारणा निश्चित रूपसे घर कर चुकी थी कि पण्डित जवाहर लाल नेहरू संपूर्ण एशिया महाद्वीप में शांति के कट्टर समर्थक हैं और इस मामले में साम्राज्यवादी देशों के समक्ष किसी प्रकार भी झुकने के लिये वह तैयार नहीं है। अपनी भारत-यात्रा के दौरान में श्री चाओ ने यह

स्वीकार भी किया था। इसके फलस्वरूप जहाँ एक ओर भारत-चीन मैत्री दृढ़ हुई, वहीं दूसरी ओर एशिया में शांति-स्थापन के प्रयास को भी पर्याप्त बल मिला।

चाओ-नेहरू के मिलाप को अमेरिका ने जो पश्चिमी देशों की नीति का काफी हद तक नियन्ता है, सन्देह की दृष्टि से देखा। वस्तुतः इसमें सन्देह की कोई गुञ्जाइश न थी। नेहरू जी ने श्री चाओ की यात्रा के दौरान में पुनः एक बार चीन के संबन्ध में अपने विचार काफी विस्तार से व्यक्त कर दिये थे। २६ जून, सन् १९५४ को श्री चाओ के सम्मान में राष्ट्रपति भवन में आयोजित समारोह के अवसर पर नेहरू जी ने जो भाषण किया था, उसमें उपर्युक्त विचार निहित थे। वास्तव में इस भाषण में नेहरू जी ने स्वयं चीन के सम्बन्ध में अपने भावों का सिंहावलोकन किया था। उन्होंने कहा था—"पन्द्रह वर्ष हुए मैं चीन गया था और इस इरादे से गया था कि वहाँ मास डेढ़-मास रहूँगा और मैं उम्मीद करता था कि वहाँ मिस्टर चाओ एन लाई से मिलूँगा। लेकिन, एक अजीब इत्तिफाक हुआ कि मैं वहाँ सिर्फ पाँच-छः दिन ही था कि यूरोप में लड़ाई छिड़ गयी और मुझे यकायक वापस आना पड़ा। इसलिए मैं आपसे न मिल सका और इस बात का मुझे अफसोस है। अब पन्द्रह वर्ष के बाद मेरी पुरानी ख्वाहिश पूरी हुई है। मुझे इस पर खुशी है कि एक बहुत बड़े आदमी से मेरा मिलन हुआ लेकिन, इसके अलावा यह हमारे मुल्क में एक बड़ी कौम और एक बड़े मुल्क के नुमाइन्दे की हैसियत से आये हैं, इसलिए हमें और भी खुशी है। उनका और हमारा मिलना खाली दो आदमियों का या चंद आदमियों का मिलना नहीं है बल्कि एशिया के दो बड़े मुल्कों के नुमाइन्दों का मिलना है। हम चाहे कुछ भी हस्ती रखें लेकिन हमारी नुमाइन्दगी की हस्ती एक बड़ी चीज है, क्योंकि बड़े मुल्कों की तरफ से हम बोलते हैं। तो, इन दो बड़े मुल्कों का मिलना इस तरह से एक तारीखी बात है। आजकल की दुनिया में क्या हो, या क्या न हो, यह कहना मुश्किल है लेकिन चीन और हिन्दुस्तान का एक दूसरे से क्या बर-ताव हो, एक दूसरे से कैसा रिश्ता हो, यह एक बड़ी बात है जिसका असर एशिया पर पड़ेगा और जाहिर है कि कुछ दुनिया पर भी पड़ेगा।.........
हमारे दोनों मुल्कों के पुराने रिश्ते हजारों वर्ष के हैं और इन हजारों वर्षों में बहुत ऊँचा-नीचा हमारे मुल्कों ने देखा है।......लेकिन एक अजीब इत्तिफाक

है कि इन हजारों वर्षों में ये दोनों कौमें, बड़ी जानदार कौमें, दूर-दूर तक दुनिया में फिरती रहीं और अपना पैगाम, अपने खयालात, अपने विचार, अपने साहित्य, अपने धर्म, और अपनी कलाओं को जगह-जगह ले जाती रहीं लेकिन कभी भी हजारों वर्षों में इन दोनों मुल्कों में लड़ाई नहीं हुई। ऐसी मिसाल दुनिया के इतिहास में मिलनी शायद मुश्किल है।......हिन्दुस्तान और चीन, दोनों मुल्क पिछले चन्द वर्षों में आजाद हुए। उनको अपनी जिन्दगी बसर करने और अपने रास्ते पर चलने का मौका मिला। हमारे आजाद होने के तरीके मुख्तलिफ थे......लेकिन दोनों मुल्कों के सामने कई बातें थी जो मिलती-जुलती थीं। अलावा आजादी के, खास बात यह थी कि हम अपने मुल्क के करोड़ों आम लोगों की बेहतरी करें। उनको उठाने की और उनकी हजारों-सैकड़ों वर्षों की मुसीबतें हटाने की बात थी।......अभी कुछ दिन हुए, चीन और हमारे देश में एक समझौता हुआ है, तिब्बत के सिलसिले में। उस समझौते में कुछ सिद्धान्तों और कुछ उसूलों का जिक्र है (पञ्चशील सिद्धान्त—सह-अस्तित्व के सिद्धान्त)... . अगर आप गौर करें तो आप देखेंगे कि अगर यही उसूल दुनिया के सब मुल्क मान लें और एक दूसरे के काम में बेजा दखल न दें, यानी एक दूसरे से सहयोग करें तो दुनियाँ की मुसीबतें काफी कम हो जायँगी और आजकल लड़ाई का जो डर है, वह भी चला जायगा।"

प्रत्यक्षतः श्री चाओ एन लाई की भारत-यात्रा का कोई राजनीतिक उद्देश्य न था लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के कारण उसका परिणाम अवश्य राजनीतिक महत्त्व का रहा, इससे कोई इनकार नहीं कर सकता। फिर भी, यह तो नहीं ही कहा जा सकता कि यह परिणाम अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में राजनीतिक गुटबन्दी जैसा रहा। यह बात दूसरी है कि कुछ देशों ने श्री चाओ की यात्रा को इस रूप में ही देखा। इसका आधार क्या है, यह सम्बन्धित देशों ने बताया नहीं लेकिन उनकी रीति-नीति से यह जाहिर अवश्य हो गया। मनीला सम्मेलन में दक्षिण-पूर्वी एशिया प्रतिरक्षा संघटन के प्रयास और उनके फल ने अवश्य सब कुछ बता दिया।

श्री चाओ एन लाई की भारत-यात्रा का परिणाम एक ही था और इसे

भारत से विदा होते समय स्वयं श्री चाओ ने स्पष्ट कर दिया था। २८ जून, १९५४ को दिल्ली से विदा होते समय उन्होंने जो वक्तव्य दिया था, उसमें कहा था कि "पिछले तीन दिनों में चीन और भारत की जो बातें हुई हैं, उसमें वातावरण एक दूसरे से सहयोग करने और एक दूसरे को समझने का रहा है और इसीलिए उसमें निश्चित सफलताएँ प्राप्त हुई हैं। मुझे विश्वास है कि इस तरह की सफलताएँ केवल चीन और भारत की ही मित्रता को मजबूत न करेंगी बल्कि एशिया और संसार की शान्ति को पुष्ट करने में भी सहायक होंगी।" यह कथन न तो अब अतिशयोक्तिपूर्ण था, न अब है। वास्तव में उन्होंने सूत्र रूप में वे बातें कहीं थी जिनका उल्लेख उनकी और पण्डित जवाहर लाल नेहरू की २८ जून, सन् १९५४ की संयुक्त घोषणा में [1] विस्तार से किया गया था। विश्व के इतिहास में इस घोषणा का स्थायी महत्त्व है और रहेगा। इस घोषणा के फलस्वरूप एशिया के राजनीतिक विचारों की गति को एक नयी दिशा मिली, उन्हें एक नया बल प्राप्त हुआ और एशियाई राष्ट्रों के मामले में पश्चिमी राष्ट्रों के हस्तक्षेप की प्रवृत्ति को करारा धक्का लगा। सच है कि उपर्युक्त घोषणा ने एशिया के राजनीतिक वातावरण में गहरा परिवर्तन किया। इस परिवर्तन के प्रकाश में एशिया की छिपी हुई शक्ति निखर उठी। यह कहना युक्ति-संगत ही होगा कि पश्चिमी राष्ट्रों की नकेल को हाथ में रखने वाले संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका के कान इस घोषणा से खड़े हो गये; क्योंकि इस घोषणा का मूलभूत तथ्य उसकी दृष्टि में सन्देहपूर्ण था। यह तथ्य है सह-अस्तित्व के सिद्धान्त का। भारत को इसमें विश्वास प्रकट करते देख कर और वह भी चीन के साथ हाथ मिला कर, अमेरिका का चिन्तित होना स्वाभाविक था। अमेरिका में कुछ लोग ऐसे भी निकले जो अपना क्षोभ छिपा न सकें। इनमें सिनेटर नोलैण्ड प्रमुख व्यक्ति हैं। यह अपना गुबार छिपा न सके और सदा की भाँति इस बार भी उन्होंने जी भरकर भारत को खरी-खोटी सुनायी और अमेरिका की ओर से भारत को दी जाने वाली आर्थिक सहायता में कटौती तक करने का सुझाव देने में हिचक नहीं प्रकट की। सिनेटर नोलैण्ड अपने मत के अकेले व्यक्ति थे, यह कहना ठीक न होगा। इतना ही कहा जा सकता

१. परिशिष्ट—३

है कि चीन के प्रति भारत के रुख से असन्तुष्ट होते हुए भी अधिकतर लोग कोई ऐसा काम करने के लिए तैयार न हुए जो प्रत्यक्षतः प्रतिहिंसामूलक होता और जो भारत को अमेरिका से दूर खींच लेता। बाद में अप्रत्यक्ष रूप में अमेरिका के नेतृत्व में भारत-चीन समझौते का प्रतिवाद सामने आ ही गया। मनीला समझौता इसका परिणाम है। अगले अध्याय में इस पर विस्तार से विचार किया जायगा। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि चाओ-नेहरू घोषणा में जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया, मनीला समझौते के सिद्धान्त ठीक उनके विपरीत हैं।

मनीला सन्धि

सितम्बर, सन् १९५४ में आठ देशों के बीच मनीला समझौता हुआ था। यह समझौता दक्षिण-पूर्व एशिया प्रतिरक्षा संघटन के नाम से प्रसिद्ध है। इसका जनक अमेरिका है। इसमें भाग लेने के लिए दक्षिण-पूर्वी एशिया के अन्य राष्ट्रों के साथ-साथ भारत को भी आमन्त्रित किया गया था। भारत की ओर से पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने इसमें भाग लेने से इनकार कर दिया था। उनका यह फैसला जिन धारणाओं पर आधारित रहा, वे मनीला समझौते के सम्बन्ध में चीनी लोक गणतन्त्र की धारणाओं से बहुत मिलती-जुलती हैं। इसके अतिरिक्त भारत की राय के साथ दक्षिण-पूर्वी एशिया के बर्मा और हिंद-एशिया तथा लंका ऐसे राष्ट्रों की राय का भी मेल रहा। इन चारों राष्ट्रों को सम्मेलन में भाग लेने के लिए निमन्त्रण मिला था किन्तु उन्होंने इसमें भाग नहीं लिया। पाकिस्तान का मनीला समझौते से कोई मतभेद नहीं था। इन बातों को देखते हुए कौन यह कह सकता है कि मनीला समझौता दक्षिण-पूर्वी एशिया प्रतिरक्षा संगठन का समझौता है? जाहिर है कि किसी ऐसे समझौते का दक्षिण-पूर्वी एशिया के क्षेत्र की रक्षा-व्यवस्था से कोई सम्बन्ध हो ही नहीं सकता जिसमें इस क्षेत्र के बर्मा, हिन्द-एशिया और भारत ऐसे प्रमुख राष्ट्र भाग न लें।

सन् १९४८ में अमेरिका के इशारे पर फिलिपाइंस के तत्कालीन राष्ट्रपति द्वारा प्रस्तुत प्रशान्त-संघ योजना का ही परिवर्तित रूप मनीला समझौता है। उस समय अमेरिका ने प्रशान्त क्षेत्र और सुदूर पूर्व में कम्युनिस्टों का मुकाबला करने के लिए ही इस योजना को प्रश्रय दिया था। जुलाई, सन् १९५४ में जनेवा सम्मेलन के बाद हिन्द-चीन के मामले को लेकर पुनः

दक्षिणी-पूर्वी एशिया में कम्युनिस्ट-विरोधी सैनिक संघटन बनाने की अमेरिका की भावना ने जोर पकड़ा। जिस समय जनेवा में हिन्द-चीन और कोरिया के मामले में सम्मेलन हो रहा था, बराबर अमेरिका की ओर से सैनिक शक्ति का उपयोग करने की धमकी दी जा रही थी। इन धमकियों के बीच भी जब शान्तिप्रिय राष्ट्रों के दबाव के कारण और हिन्दचीन के प्रश्न से मुख्य रूप में सम्बन्धित वियतनाम (हो चि मिन्ह पक्ष) और फ्रांस की इच्छा के कारण समझौता हो गया तो अमेरिका ने दक्षिण-पूर्वी एशिया प्रतिरक्षा संघटन सम्बन्धी सुझाव के रूप में दूसरा सुर छेड़ा। हाँ, इसके उद्देश्य को उसने छुपाया नहीं। ६ सितम्बर, सन् १९५४ को मनीला सम्मेलन का कार्यारम्भ करते हुए अमेरिका के परराष्ट्र मन्त्री सर जान फास्टर डलेस ने जो भाषण किया था, उसमें मनीला समझौते के उद्देश्य स्पष्ट हैं। इस भाषण का यहाँ उल्लेख करना प्रासङ्गिक ही होगा। श्री डलेस ने कहा था:—"हम यहाँ पर दक्षिण-पूर्वी एशिया में एक सामूहिक सुरक्षा-व्यवस्था का संघटन करने के लिए एकत्र हुए हैं। हम संयुक्त राष्ट्रसंघ के घोषणा-पत्र द्वारा प्रदत्त अधिकारों तथा उसके सिद्धान्तों के अनुरूप ही ऐसा कर रहे हैं। हम जो कुछ कर रहे हैं, उसका उद्देश्य किसी राष्ट्र या किन्हीं लोगों को हानि पहुँचाना नहीं है। हम तो केवल संयुक्त राष्ट्रसंघ के घोषणा-पत्र द्वारा प्रदत्त सामूहिक सुरक्षा के मूलभूत अधिकार का ही उपभोग कर रहे हैं।"

"दक्षिण-पूर्व एशिया में अमेरिका का कोई प्रादेशिक स्वार्थ नहीं है। परन्तु फिर भी हम अनुभव करते हैं कि हमारे तथा इस क्षेत्र के निवासियों के हित समान हैं।"

"एक समान खतरे के कारण हम एक हो गये हैं। यह खतरा अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद और उसकी असीमित महत्वाकांक्षाओंके कारण पैदा हुआ है। हम यह जानते हैं कि यदि कहीं अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद लाभान्वित होता है तो वह उससे सन्तुष्ट नहीं हो जाता बल्कि उसका उपयोग भविष्य में और अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए करता है। उदाहरणार्थ हिन्दी-चीन को लिया जा सकता है। इस कारण बस हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम इस सम्बन्ध में बराबर सचेत रहें कि अन्यत्र क्या हो रहा है।"

"यह खतरा कई रूपों में विद्यमान है। एक खतरा तो खुल्लम खुल्ला आक्रमण होने का है। सन्धि में शामिल देशों पर किये गये किसी भी आक्रमण का हम संयुक्त रूप से इतना शक्तिशाली और प्रभावशाली विरोध करेंगे कि आक्रमणकारी को लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक उठानी पड़ेगी—यह स्पष्ट कर, हम खतरे को बहुत कम कर सकते हैं।"

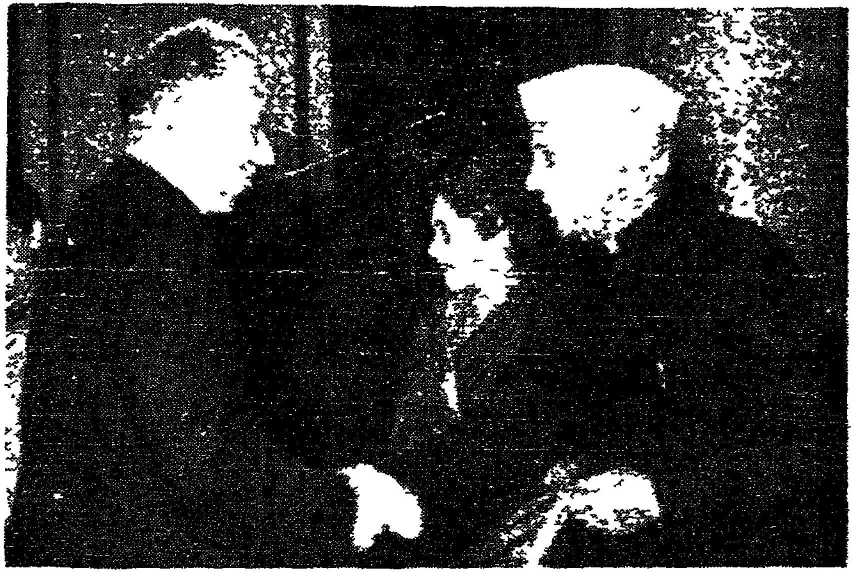
"अतः संघटन के सदस्य-राष्ट्रों के लिये यह अनिवार्य कर दिया जाय कि वे आक्रमण का विरोध करने के लिये अपनी निजी और सामूहिक क्षमता को बढ़ायेंगे। अमेरिका स्वयं भी यही कर रहा है। साथ ही इस क्षेत्र के अन्य राष्ट्र-फिलिपाइन्स, थाइलैण्ड, पाकिस्तान इस दिशा में जो प्रयत्न कर रहे हैं, उन्हें देख कर भी हमें बहुत सन्तोष हुआ है। हम आस्ट्रेलिया के प्रधान मन्त्री की इस ऐतिहासिक घोषणा का स्वागत करते हैं कि आस्ट्रेलिया शान्तिकाल में भी समुद्र पार के देशों में सैनिक उत्तरदायित्व ग्रहण करने को तैयार है।"

"इस बात की पक्की व्यवस्था कर लेना आवश्यक है कि संधि-संघटन के सदस्य-राष्ट्रों के निजी साधनों का उपयोग सन्धि में शामिल सभी राष्ट्रों के कल्याण को दृष्टि में रखकर किया जायगा। इस सम्मेलन में उपस्थित राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद द्वारा एशिया में संघटित की गयी विशाल स्थल सेना का मुकाबिला नहीं कर सकते। यदि स्वतन्त्र राष्ट्र संसार में सभी खतरों के स्थानों पर शक्तिशाली स्थल सेना रखने का प्रयत्न करेंगे तो इससे स्वयं उनका अस्तित्व खतरे में पड़ जायगा।"

"जहाँ तक अमेरिका का सम्बन्ध है, उसने काफी विस्तृत क्षेत्र में बहुत अधिक उत्तरदायित्व ग्रहण कर रखे हैं। उसे यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि अपनी सहायता का सर्वोत्तम उपाय, प्रतिरोध के लिए किसी भी स्थान पर शीघ्रतापूर्वक प्रहार कर सकने की क्षमता को बनाना तथा इसके साथ ही सामरिक महत्व के स्थानों पर सुरक्षित सेना तैयार रखना है।"

"मुझे विश्वास है कि यदि प्रस्तावित संधि संघटन के सदस्य-राष्ट्र अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार इस दिशा में पर्याप्त प्रयत्न करेंगे और उनमें साभ-

चीन और नेहरू—



चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के प्रधान-मन्त्री ल्यू शाओ पं० नेहरू का स्वागत कर रहे हैं



मेनाधिपति चू-तेह और पं० नेहरू का मिलन



पं० नेहरू पेकिंग के प्रसिद्ध स्वर्ग-मन्दिर में

जस्य स्थापित रखेंगे तो ऐसी शक्ति का निर्माण किया जा सकता है जिससे हम सबकी रक्षा हो सकेगी।"

"खुले और सशस्त्र आक्रमण के खतरे के अलावा, हमें तोड़-फोड़ और अप्रत्यक्ष आक्रमण के खतरे का भी सामना करना पड़ रहा है। इस प्रकार के खतरे का सामना करने का कोई सरल उपाय नहीं है। इसका सामना करने के लिए ऐसी दृढ़ निष्ठा, सहनशीलता और साधन सम्पन्नता की आवश्यकता है जो यहाँ (फिलिपाइंस) के राष्ट्रपति मेगारायसाय द्वारा प्रदर्शित की गयी थी।"

"यदि स्वतन्त्र राष्ट्रों के व्यापारिक सम्बन्धों में सुधार हो जाय और उसके फलस्वरूप उनकी अर्थ-व्यवस्था सुदृढ़ हो जाय तो साम्यवाद के प्रसार का खतरा घट जायगा। इसके लिए यह आवश्यक होगा कि दक्षिण-पूर्वी एशिया की सुरक्षा के सम्बन्ध में विशेष दिलचस्पी रखने वाले राष्ट्रों के अलावा अन्य राष्ट्र भी इसमें योग दें। यदि एक प्रभावकारी राष्ट्रीय योजना बनानी है तो इसमें केवल दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों में ही नहीं बल्कि दक्षिण-पूर्वी एशिया और दक्षिण-पश्चिमी प्रशान्त क्षेत्र के बीच भी व्यापार को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये। इस प्रकार की योजना बनाना इस सम्मेलन के कार्य-क्षेत्र के बाहर की बात है। लेकिन यदि हमने इस सम्मेलन में, इस क्षेत्र के राष्ट्रों को केवल सैनिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से भी अधिक शक्ति-शाली और दृढ़ बनाने के सम्बन्ध में कोई सुविचारित निर्णय न किया तो इससे उन बहुत से लोगों के प्रति हम अपना कर्तव्य पूरा न करेंगे जिनकी आशा हम पर लगी है।"

"इस सम्मेलन में प्रस्तावित सुरक्षा सन्धि-क्षेत्र से घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित कुछ राष्ट्र उपस्थित नहीं हैं। इन देशों में कम्बोडिया, लाओस और वियतनाम भी हैं। इन देशों की सरकारों और निवासियों को यह विश्वास रखना चाहिये कि हम सदैव उनका ध्यान रखेंगे और यह आशा करते हैं कि हम उनकी सुरक्षा की थोड़ी बहुत व्यवस्था अवश्य कर सकेंगे। ऐसे भी देश हैं जो सम्भवतः बाद को हमारे सुरक्षा संघटन में शामिल होना चाहें। मुझे आशा है है कि प्रस्तावित सन्धि में नयी सदस्यता प्रदान करने से सम्बन्धित धारा शामिल कर ली जायगी।"

"हमारी समस्या का एक ऐसा पहलू भी है जिसे सदैव स्मरण रखना चाहिये। एशिया के निवासी "उपनिवेशवाद" के जुए को उतार फेंकने के लिए उत्सुक हैं। अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद अपना प्रभाव जमाने के लिए प्रथमतः "राष्ट्रीयता" की आवाज बुलन्द करता है और इसके बाद अपना नृशंस साम्राज्यवाद दूसरों पर लाद देता है। वस्तुतः वह 'राष्ट्रीयता' के बिलकुल विपरीत है। इस साम्यवादी खतरे के प्रति सचेत रह कर हमने ठीक ही किया है। लेकिन पश्चिमी राष्ट्रों को इस सम्बन्ध में सदैव सावधान रहना चाहिये कि साम्यवाद का विरोध करने के अपने उत्साह में वे कहीं उन लोगों की भावनाओं को सर्वथा भुला न दें जो आज भी पश्चिमी राष्ट्रों को उपनिवेशवाद का समर्थक कहते हैं।"

"यह बिलकुल स्पष्ट कर दिया जाना चाहिये कि हम में से प्रत्येक राष्ट्र नये राष्ट्रों को स्वाधीनता दिलाने और ऐसी व्यवस्था स्थापित करने में सहायता देगा जिसके द्वारा अन्य राष्ट्र अपनी स्वाधीनता प्राप्त कर सकेंगे और उसे कायम रख सकेंगे। तभी पश्चिमी और पूर्वी देश मिल जुल कर मित्रतापूर्वक काम कर सकेंगे।"

"हम यहाँ पर अपने कुछ मतभेद दूर करने के लिए एकत्र हुए हैं। इसमें भयभीत होने की कोई बात नहीं है। स्वतन्त्र समाज में मतभेदों का होना स्वाभाविक है।"

"मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि अपने प्रारम्भिक मतभेदों को समाप्त करके ही हम एक महत्त्वपूर्ण समझौता कर सकेंगे। अपने प्रति तथा अन्य देशोंके प्रति यह हमारा कर्तव्य है।" [१]

मनीला समझौते की शर्तों में[२] श्री डलेस के उपर्युक्त भाषण की प्रायः सभी मुख्य बातें शामिल हैं। ८ सितम्बर, सन् १९५४ को इस समझौते पर जो मनीला सन्धि के नाम से विख्यात है, अमेरिका, ब्रिटेन,

१. नई दिल्ली-स्थित अमेरिका के सूचना विभाग द्वारा प्रकाशित प्रेस समाचार बुलेटिन, वर्ष ६, सं० ११५।

२. परिशिष्ट—४।

फ्रांस, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, फिलिपाइन्स, थाइलैंड और पाकिस्तान के प्रतिनिधियों ने हस्ताक्षर किये थे।

जैसा कि आरम्भ में कहा जा चुका है, चीनी लोग गणतन्त्र और भारत, दोनों ने मनीला समझौते का स्पष्ट शब्दों में विरोध किया था। इसके परिणाम-स्वरूप भारत पर यह दोषारोप भी किया गया था कि उनका झुकाव कम्युनिस्ट देशों की ओर है। यह दोषारोप सर्वथा मिथ्या रहा। इस सम्बन्ध में पण्डित जवाहर लाल नेहरू के तर्कों से यह भली-भाँति स्पष्ट है। इनका उल्लेख बाद में किया जायगा। पहले यहाँ चीनी लोक गणतन्त्र की दृष्टि का उल्लेख किया जा रहा है।

चीन के प्रसिद्ध नीम सरकारी अखबार पीपुल्स डेली के समीक्षाकार शुचु-आन ने अपने लेख में-जो ६ अगस्त, १९५४ के अंक में प्रकाशित हुआ था, मनीला समझौते की प्रस्तावना का विरोध खूब कसकर किया था। उन्होंने इसमें लिखा था कि "अमेरिका का इरादा एशिया में अपने आक्रमण के क्षेत्र को विस्तृत करने का और एशियाई देशों पर एक सैनिक गुट थोपने का है जिससे उन्हें अमेरिका की चीनी जन-विरोधी द्वेषपूर्ण नीति के अनुसरण के लिए बाध्य किया जा सके।"..........."अमेरिका का शासक गुट कम्बोडिया, लाओस और बाओदाई के वियतनाम को भी इस आक्रामक गुट में घसीटना चाहता है। हिन्द-चीन विराम समझौते में स्पष्टतः यह व्यवस्था है कि हिन्द-चीन के ये तीनों राज्य किसी भी सैनिक गुट में शामिल नहीं हो सकते।.. ... यह स्पष्ट है कि अमेरिका की इस योजना (मनीला समझौता) का उद्देश्य इस पवित्र समझौते को भंग करना और हिन्द-चीन विराम सन्धि को धक्का पहुँचाना रहा है।" [१]

मनीला समझौते पर हस्ताक्षर होने के बाद भी चीन में इसका विरोध जारी रहा। चीन के प्रधान मन्त्री श्री चाओ एन लाई ने चीनी लोक राज-नीतिक सलाहकार सम्मेलन की प्रथम राष्ट्रीय समिति के उपाध्यक्ष की हैसियत से २१ दिसम्बर, सन् १९५४ को चीनी लोक राजनीतिक सलाहकार सम्मेलन की

१. नयी दिल्ली-स्थित चीनी दूतावास के संस्कृति सूचना कार्यालय द्वारा प्रकाशित समाचार बुलेटिन—संख्या ३४—१९५४, २० अगस्त, १९५४ पृष्ठ संख्या ३—४।

द्वितीय राष्ट्रीय समिति के अधिवेशन में जो रिपोर्ट पेश की थी, उसमें भी मनीला समझौते का उल्लेख किया गया। रिपोर्ट में बताया गया है कि "अमेरिका जनेवा समझौते को भंग करने के लिए वियतनाम में सक्रिय हस्तक्षेप कर रहा है। अमेरिकी आक्रमण गुट और उसके अनुयायियों ने मनीला सन्धि पर हस्ताक्षर किये हैं जिसका उद्देश्य जनेवा समझौते की जड़ खोदना है।"

श्री चाओ एन लाई ने अन्य अवसरों पर भी कई बार मनीला समझौते का विरोध किया और इसका कारण बताया। २७ सितम्बर, सन् १९५४ को प्रथम राष्ट्रीय लोक कांग्रेस के समक्ष सरकारी कार्यों की जो रिपोर्ट उन्होंने प्रस्तुत की थी, उसमें भी मनीला समझौते का विरोध उल्लिखित है। इसमें कहा गया है कि 'एशिया में, आक्रामक अमेरिकी गुट ने मनीला में आठ राष्ट्रों का सम्मेलन किया जिसमें तथाकथित दक्षिण-पूर्वी एशिया प्रतिरक्षा सन्धि का कार्य सम्पन्न हुआ। इस सन्धि से जाहिर है कि अमेरिका का उद्देश्य जनेवा सम्मेलन में हुए समझौतों को नष्ट करना, एशिया में फूट पैदा करने के लिए सैनिक सहयोग संघटन बनाना, चीनी लोक गणतन्त्र के प्रति आक्रामक रुख अपनाना एशियाई देशों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप तथा नयी उत्तेजना पैदा करना है।" ...."यह मार्के की बात है कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के साथ सैनिक सहायता सन्धि करने वाले देशों में तीन एशियाई देशों को छोड़कर, इस तथाकथित दक्षिण-पूर्वी एशिया सामूहिक रक्षा-सन्धि में भाग लेने वाले सभी देश गैर एशियाई हैं। स्पष्टतः इस सन्धि से यही सिद्ध होता है कि यह उपनिवेशवादी शक्तियों के सैनिक सहयोग के अलावा और कुछ नहीं है। यह सैनिक सन्धि न केवल सुदूर पूर्व में चीन को आक्रमण का मुख्य लक्ष्य बनाने की अमेरिका की नीति को पुष्ट करती है बल्कि सभी दिशाओं से एशियाई देशों पर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के आक्रमण को सुविधाजनक भी बनाती है "साम्यवादी आक्रमण" के बहाने जिसका अस्तित्व भी नहीं है, इस सन्धि के सहारे स्वतन्त्रतापूर्वक भय फैला कर, आशंका उत्पन्न कर और कुछ एशियाई देशों को दूसरे एशियाई देशों के विरुद्ध उसकाकर, अमेरिका एशिया में फूट डाल सकता है। तथाकथित "तोड़-फोड़ की कारवाई" को रोकने तथा इसका प्रतिकार करने के बहाने, इस सन्धि के सहारे संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, जहाँ कहीं भी वह

चाहे दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप कर सकता है और एशिया में स्वातन्त्र्य आन्दोलन को दबा सकता है। 'आर्थिक उपायों' (इकनामिक मेजर्स) के उपबन्धों पर अमल करते हुए सन्धि के सहारे संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, दक्षिण-पूर्वी एशिया को सामरिक महत्त्व के सामनों से वञ्चित कर सकता है, यहाँ के लोगों को गुलाम बना सकता है और अपनी औपनिवेशिक सत्ता स्थापित कर सकता है। इस क्षेत्र में 'ऐसे तथ्य से या स्थिति से खतरा उत्पन्न हो गया है जो यहाँ की शांति को संकटापन्न कर सकती है'—यह बहाना करके इस सन्धि के सहारे संयुक्त राष्ट्र अमेरिका आजादी के साथ अपने तथाकथित संरक्षण में किसी भी क्षेत्र को लेने की घोषणा कर सकता है ताकि एशिया के दूसरे भागों में सशस्त्र हस्तक्षेप कर सकने की उसकी नीति का विस्तार हो जाय। वास्तव में फिलिपाइंस और थाइलैण्ड पर चीन के तथाकथित 'आक्रमण का खतरा' न केवल कपोल कल्पित है बल्कि यह भी अपराधहीन बात है कि चीन और थाइलैण्ड तथा चीन और फिलीपाइन्स के बीच साधारण राजनीतिक सम्बन्ध कायम नहीं हो सकते। अमेरिकी आक्रमक शक्तियों के प्रति अपनी सेवाओं को न्यायपूर्ण बनाने के लिए यह दोनों राष्ट्रों का बहाना मात्र है। इन बातों के आधार पर यह देखा जा सकता है कि इस सन्धि के अन्तर्गत सैनिक सहयोग द्वारा उपनिवेशवादी राष्ट्र एशियाई देशों के भाग्य का निपटारा करने तथा स्वभाग्य निर्णय के एशियाई देशों के अधिकार को रौंदने की कोशिश कर रहे हैं। यह सन्धि संयुक्त राष्ट्रसंघ के घोषणा-पत्र के उद्देश्यों और सिद्धान्तों के विरुद्ध है। भारत, हिन्दएशिया, बर्मा और लंका सदृश दक्षिण-पूर्वी एशिया के प्रमुख देशों ने, अपनी स्वतन्त्रता और आजादी की रक्षा करते हुए मनीला सम्मेलन में भाग लेने से इनकार कर दिया। इन चार देशों के न्यायपूर्ण निर्णय का चीनी लोक गणतन्त्र की सरकार पूरी तरह समर्थन करती है और उपर्युक्त सैनिक सहयोग का दृढ़ता के साथ विरोध करती है जिसका उद्देश्य दक्षिण-पूर्व एशिया में फूट पैदा करना है।"

"दक्षिण-पूर्व एशिया सामूहिक रक्षा-संधि पर हस्ताक्षर करने वाले देशों ने निरंकुशता-पूर्ण ढङ्ग से अपने 'संरक्षण' के क्षेत्र के अन्तर्गत कम्बोडिया,

लाओस और वियतनाम के दक्षिण भाग को शामिल कर लिया है और कम्बोडिया लाओस और वियतनाम के सम्बन्ध में जनेवा समझौते का पालन न होने देने की कोशिश की है।"[1]

चीन द्वारा मनीला सन्धि के विरोध का आधार उपर्युक्त उद्धरणों में निहित है। भारत का विरोध भी प्रकारान्तर से लगभग उन्हीं बातों पर आधारित है जिनका उल्लेख चीनी प्रधान मन्त्री श्री चाओ एन लाई की उपर्युक्त रिपोर्ट में मिलता है। ८ सितम्बर, सन् १९५४ को सम्बन्धित देशों ने मनीला सन्धि पर हस्ताक्षर किए थे। दूसरे ही दिन अर्थात् ९ सितम्बर को भारत के प्रधान मन्त्री की हैसियत से पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने इस सन्धि का गहरा विरोध किया था। इस अवसर पर ही उन्होंने जार्ज आरवेल के प्रसिद्ध उपन्यास 'नाइन्टीन एट्टी फोर' में प्रयुक्त इस मुहावरे को दोहराया था कि 'हम सोचते कुछ हैं और करते कुछ और हैं (डबल थिंक एण्ड डबल टाक)। इस व्यङ्गात्मक मुहावरे के उपयोग से सन्धि के प्रति नेहरू जी के विरोध की तीव्रता भलीभाँति स्पष्ट हो जाती है। इस भाषण में ही उन्होंने यह भी कहा था—"एशियाई समस्याओं, एशियाई सुरक्षा और एशियाई शान्ति के सम्बन्ध में न केवल-विचार-विमर्श किया जाता है, बल्कि कार्रवाई भी की जाती है और इनके सम्बन्ध में सन्धियाँ भी की जाती है और ये भी मुख्यतः गैर एशियाई देशों द्वारा।"[2].........."एक और भी भद्दी बात है। कुछ देश, जिनके स्वार्थ समान होते हैं, अपनी रक्षा के लिए आपस में मिल जाते हैं।" यह सैनिक तथा अन्य प्रकार की सन्धियों के सम्बन्ध में इतिहास का साधारण तथ्य है। लेकिन अब सन्धि में एक नयी बात भी घुस जाती है। कुछ देश, दूसरे देशों की, जो उनसे मिलना नहीं चाहते, रक्षा करने के लिए एक दूसरे के साथ हो जाते हैं। यह असाधारण बात है दूसरे देश किसी का संरक्षण

---

१. चाओ एन लाई—'रिपोर्ट आन दि वर्क आफ दि गवर्नमेंट'—पृ० सं० ४८-४९।

२. दिल्ली प्रेस असोसिएशन द्वारा नेहरू जी के सम्मान में आयोजित योग में उनका भाषण स्टेट्समैन (दिल्ली संस्करण) के १० सितम्बर, १९५४ के अंक से उद्धरित पृ० सं० ६।

प्राप्त नहीं करना चाहते, वे चिल्लाकर इसकी घोषणा करते हैं, फिर भी उनसे कहा जाता है, 'हमारा संरक्षण अवश्य प्राप्त करना चाहिये।' ये बातें बहुत विचित्र हैं और मैं इन्हें समझ नहीं पाता।"

नेहरूजी द्वारा मनीला सन्धि के तीव्र विरोध के कारण उनके अनेक भाषणों में निहित मिलेंगे। वास्तव में सन्धि की प्रस्तावना के समय से लेकर उस पर हस्ताक्षर किये जानेतक बराबर उन्होंने इसका विरोध किया और इस विरोध के कारण भी उन्होंने बताये। सन्धि पर हस्ताक्षर होने से पूर्व २५ अगस्त, सन् १९५४ को भारत की लोक सभा में अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति की समीक्षा करते हुए उन्होंने कहा था—"अगले महीने के आरम्भ में बोगिओ, (फिलिपाइन्स) में दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों का सामूहिक संघटन बनाने पर विचार किया जायगा। इस सम्मेलन में सम्मिलित होने के सम्बन्ध में हम अपनी असमर्थता प्रकट कर चुके हैं, क्योंकि हमें जान पड़ता है कि हिंद-चीन के समझौते से मेल-मिलाप की जो धारा फूटी है, इससे उसका प्रवाह विपरीत दिशा की ओर हो जायगा। हमें डर है कि दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों के सामूहिक संघटन से भविष्य में लाभ के बजाय हानि अधिक होगी।" ये बातें दूसरे दिन अर्थात् २६ अगस्त को राज्यसभा में नेहरूजी ने दोहरायी भी थी। २७ अगस्त, सन् १९५४ को राज्यसभा में श्री एस० सी० माथुर के ३० अप्रैल के प्रस्ताव पर बहस को पुनः जारी करते हुए भी नेहरूजी ने मनीला सन्धि का उल्लेख किया था। इस समय तक सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं हुए थे, केवल उसका प्रस्ताव सामने था। इस अवसर पर कही गयी बातें मूलतः ९ सितम्बर, १९५४ को कही गयीं बातों से मिलती-जुलती हैं। उन्होंने कहा था--"श्री कृष्ण मेनन द्वारा यह बताया गया है कि यह केवल ऐसी सन्धि नहीं होगी जिसमें कुछ देशों द्वारा एक दूसरे के लिए कुछ करने का वादा किया जायगा-चाहे यह सैनिक सहयोग के रूप में हो अथवा अन्य रूप में। अन्य देशों की रक्षा के निमित्त कुछ करने के उद्देश्य से कुछ देशों के बीच यह सन्धि होगी जो काफी विचित्र बात है। दो देशों के

१.—अंग्रेजी दैनिक 'स्टेट्समैन' (दिल्ली संस्करण) के १० सितम्बर, १९५४ अङ्क में पृष्ठ सात पर प्रकाशित नेहरू जी के भाषण (दिल्ली प्रेस एसोसियेशन द्वारा आयोजित भोज में) की रिपोर्ट से उद्धरित।

आपस में मिलने की तथा इस बात पर विचार करने की कि तीसरे या चौथे देश के सम्बन्ध में वे क्या करेंगे, यह नये प्रकार की धारणा (कंशेप्सन) है। जनेवा सम्मेलन की मूलभूत बातों में एक बात यह थी कि... हिंद-चीन के देश तटस्थ रहें और वे न तो एक गुट में मिलें, न दूसरे में। यह बहुत महत्वपूर्ण बात है। वस्तुतः इस बात पर जनेवा सम्मेलन समाप्त हुआ। एक ओर फ्रांस के मित्र-देश भविष्य में अपने विरुद्ध हिंद-चीन के प्रदेशों के उपयोग की सम्भावना बरदास्त न कर सके और दूसरी ओर चीन अपने विरुद्ध इन देशों का उपयोग युद्ध के अड्डों या अन्य रूप में, बरदास्त न कर सका। इसलिए कठिनाई से बचने का एकमात्र मार्ग यह था कि ये प्रदेश किसी ओर भी न रहें। यह मूलभूत बात है। अब यदि कोई ऐसा काम किया जाता है जो हिंद-चीन की तटस्थता को प्रभावित करता है तो जनेवा सम्मेलन के निर्णय के आधार की पूरी धारणा डगमगा उठती है। मैं नहीं जानता कि दक्षिणी-पूर्वी एशिया सम्मेलन में क्या होगा और क्या न होगा। लेकिन यदि इसके किसी कार्य से उपर्युक्त धारणा को धक्का पहुँचता है तो किसी हद तक यह हिन्द-चीन करार की आधार भूत धारणा को धक्का पहुँचता है—न केवल मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बल्कि व्यवहारिक दृष्टि से भी।...एक और भी दिलचस्प बात है। मान लीजिए, किसी प्रकार का सैनिक समझौता होता है। तब इसका परिणाम यह होगा कि कुछ दूसरे समझौतों का प्रभाव भी उन देशों पर पड़ने लगेगा जो नये समझौतों में शामिल होंगे।'

बावजूद इस बात के कि एशिया के दो महान राष्ट्र भारत और चीन तथा दक्षिणी-पूर्वी एशिया के चार प्रमुख राष्ट्र भारत, बर्मा, हिंद-एशिया और लंका मनीला सन्धि के विरोधी रहे, अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस अपना सुर अलापते ही रहे। मनीला सन्धि की उपयोगिता सिद्ध करने में और उसे एशियाई राष्ट्रों के हित में बताने में उन्होंने कोई कोर-कसर उठा न रखी। ब्रिटेन के अनुदार दलकी बात दूर रही, वहाँ के मजदूर दल ने भी इसका समर्थन करने में हिचक प्रकट नहीं की। मनीला सन्धि के प्रति विरोध प्रकट करने वाला प्रस्ताव स्कारबरो में होनेवाले मजदूर दल के वार्षिक सम्मेलन में २,५७०,००० के मुकाबिले में ३,६६९,००० मतों से अस्वीकार कर दिया

गया था। अमेरिका की तो बात ही निराली थी। वहाँ दोनों प्रमुख राजनीतिक दलों के साथ-साथ सभी प्रभावशाली समाचार पत्रों ने भी जी खोल कर मनीला संधि का समर्थन किया था। प्रसिद्ध अखबार न्यूयार्क टाइम्स ने लिखा था कि "आठ देशों में जो समझौता हुआ है, वह सिर्फ सैनिक समझौता नहीं है और उसका क्षेत्र कहीं अधिक व्यापक है।......इसमें एक सिद्धान्त की स्पष्ट रूप से घोषणा की गयी है। वह यह है कि सन्धि पर हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्र संसार के सभी देशों में वहाँ की जनता के स्वतन्त्र मत से चुनी गयी सरकारों का शासन स्थापित करने के लक्ष्य में योग देने का प्रयत्न करेंगे।" 'वाशिङ्गटन स्टार' तो न्यूयार्क टाइम्स से भी आगे बढ़ गया था। उसने हिन्दी-चीन के सम्बन्ध में जनेवा समझौते का मजाक खुलकर उड़ाया था और इस रूप में ही मनीला संधि का समर्थन किया था। जनेवा सम्मेलन में हिन्द-चीन के तीनों राज्यों—लाओस, कम्बोडिया और वियतनाम में सैनिक कार्रवाइयाँ समाप्त करने के सम्बन्ध में जो समझौता हुआ था उसमें यह तय किया गया था कि विराम सन्धि के बाद, वियतनाम लाओस और कम्बोडिया में विदेशी सहायक सेनाएँ और सैनिक कार्यकर्त्ता प्रवेश न कर सकेंगे। 'वाशिङ्गटन स्टार' ने मनीला सन्धि का समर्थन करने के जोश में इस महत्वपूर्ण तथ्य की हत्या करने वाली सन्धि की शर्तें का न केवल आर्थिक दृष्टि से बल्कि सैनिक दृष्टि से भी समर्थन किया था और कहा था कि "कम्बोडिया, लाओस और स्वतन्त्र (बाओदाई सरकार) वियतनाम, सन्धि की आर्थिक व्यवस्थाओं में तो शामिल हो ही सकते हैं, साथ ही साथ यदि उन पर सैनिक आक्रमण हुआ तो सन्धि के अन्तर्गत उसे समान खतरा मान कर सामूहिक कार्रवाई भी की जायगी।"

यह मार्के की बात रही कि मनीला सन्धि का समर्थन करनेवालों ने उसके विरोधी चाओ एन लाई (चीन के प्रधान मन्त्री) और पण्डित जवाहर लाल नेहरू (भारत के प्रधान मन्त्री) के तर्कों का उत्तर कभी भी नहीं दिया। चीन के प्रधान मन्त्री के विरोध के कारणों का उल्लेख इससे पूर्व किया जा चुका है। नेहरू जी के विरोध के कारणों की ओर भी संकेत किया जा चुका है। उनके विरोध के मुख्यतः पाँच कारण थे—(१) मनीला सन्धि, दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों के सम्बन्ध, मनरो सिद्धान्त की भांति है जिसकी घोषणा एक पक्ष द्वारा

ही की गयी है, (२) यह हिन्दचीन के सम्बन्ध में जनेवा समझौते के लिए खतरा है, जिसमें कहा गया है कि हिन्दचीन के तीनों राज्य अन्य देशों के साथ किसी सैनिक समझौते में शामिल न हों, (३) मनीला संधि ने सुरक्षा निश्चित करने के बजाय अरक्षा और सन्देह की भावना को जन्म दिया है। मनीला संधि 'क्षेत्रीय करार' (रीजनल एग्रीमेंट) नहीं है। कुछ सार्वभौम सत्ता प्राप्त राष्ट्र जिनका दक्षिण-पूर्वी एशिया से नाम मात्र के लिए भी सांस्कृतिक, जातीय या भौगोलिक सम्बन्ध नहीं है, संधि में शामिल हुए हैं। यह स्थिति राष्ट्रसंघ के घोषणा-पत्र के घोषणा-पत्र के विपरीत है, (५) सैनिक दृष्टि से संधि पर हस्ताक्षर करने वाले पश्चिमी राष्ट्रों के अतिरिक्त दक्षिणी-पूर्वी एशिया के देशों का कोई महत्व नहीं है।

यहाँ पर यह उल्लेख करना उचित ही होगा कि पाक-अमेरिका सैनिक संधि के संदर्भ में भी नेहरूजी ने मनीला संधि का विरोध किया था। पाकिस्तान ने तो संधि पर हस्ताक्षर अमेरिका को खुश करने के लिए ही किया। अस्तु, नेहरूजी द्वारा व्यक्त विरोध के उपर्युक्त कारणों में से कुछ का विस्तृत उल्लेख किया जा चुका है। विरोध के शेष कारणों का विस्तृत विवरण उनके उस भाषण में मिलता है जो उन्होंने २९ सितम्बर, सन् १९५४ को लोकसभा में परराष्ट्र नीति-सम्बन्धी बहस को आरम्भ करते हुए किया था। इस भाषण में मनीला संधि पर नेहरूजी ने काफी प्रकाश डाला था। उन्होंने कहा था—"मैंने बहुधा इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया है कि किस विशेष आवश्यकतावश दक्षिण-पूर्वी एशिया संधि का उद्‌भव हुआ। कौन सा ऐसा आकस्मिक डर था जिसकी वजह से सम्बन्धित देश एक गुट में हो गये? क्या कोई आक्रमण होने वाला था। क्या अकस्मात् दक्षिण पूर्वी एशिया या प्रशान्त क्षेत्र की शांति संकटापन्न हो गयी थी? जनेवा समझौते के तुरन्त बाद ही मनीला संधि का समय क्यों चुना गया? मैं इनका उत्तर पाने में असमर्थ रहा हूँ। अब मैं समझता हूँ कि कारण भय है। मैं यह समझ सकता हूँ कि एशियाई देशों में भी भय है--आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड तथा हो सकता है कि उनके आस पास के देशों में भी भय हो। मैं इससे इनकार नहीं करता। तथ्य को अस्वीकार करने से कोई लाभ नहीं होता। लेकिन और अधिक सुरक्षा उत्पन्न

करने के लिए हम क्या करते हैं? हम भय का सामना कैसे करते हैं, हम इससे छुटकारा कैसे प्राप्त करते हैं और कैसे इसका प्रतिकार करते हैं या स्थिति का मुकाबला करते हैं?"

"मैं सदन के सामने यह प्रश्न रखता हूँ कि मनीला संधि से दक्षिण-पूर्वी एशिया में तनाव कम हुआ है या इससे तनाव बढ़ा है? यह दक्षिण-पूर्वी एशिया या विश्व के किसी अन्य भाग को शांति और सुरक्षा की दृष्टि से और अधिक आगे ले गयी है या नहीं ले गयी है? मैं यह कबूल करता हूँ कि न तो मैं तनाव में ह्रास देखता हूँ, न शांति की ओर प्रगति। वास्तव में स्थिति उलटी है। जनेवा समझौते द्वारा जो अच्छा वातावरण उत्पन्न हुआ था, वह कुछ हद तक विषाक्त हो गया है। यह अच्छी बात नहीं है। क्या मनीला संधि ने शांति और सुरक्षा के लिए कोई सबल आधार उत्पन्न किया है?"····"मैं यह सुझाव नहीं देता और यह सुझाव देना अयथार्थवादी होना होगा कि दक्षिण-पूर्वी एशिया के किसी देश अथवा भारत को झूठी सुरक्षा की भावना से आश्वस्त रहना चाहिये और यह सोचना चाहिए कि कुछ होने वाला नहीं है; हमें शांति के गीत गाने चाहिए और तब कुछ न होगा। मैं यह महसूस करता हूँ कि जिम्मेदार सरकारें इस प्रकार आचरण नहीं कर सकतीं। इन्हें किसी भी तरह की स्थिति का सामना करने की तैयारी करनी ही पड़ती है। लेकिन इन्हें अपनी नीति का निरूपण इस प्रकार करना चाहिए कि उसकी कोई दिशा हो और यदि दिशा शांति की ओर हो तो इस ओर ही उनकी नीति होनी चाहिए।"

"अपनी रक्षा के लिए कुछ देश एक गुट बनावें, आपस में समझौता या सहयोग करें, यह बात मेरी समझ में आती है। सैनिक दृष्टि से मनीला संधि के फलस्वरूप हुआ समझौता या सहयोग काफी मजबूत नहीं है। लेकिन इससे सम्बन्धित देशों की सीमा का अतिक्रमण जरूर होता है। इस सन्धि या समझौते में एक क्षेत्र की ओर बराबर निर्देश किया गया है और यह क्षेत्र सम्बन्धित देशों का क्षेत्र नहीं है हाँ, इस संधि में शामिल होने वाले देशों की सीमाओं के बाहर का क्षेत्र अवश्य है।...उन्होंने इस 'क्षेत्र' का उल्लेख यह कह कर किया है—

एक ऐसा क्षेत्र जो अंशतः निश्चित और अंशतः अनिश्चित है; क्योंकि सम्बंधित देश इसका विस्तार कर सकते हैं। यदि वे एक राय से यह कहते हुए सहमत हो जाते हैं कि "यह भी हमारे क्षेत्र में हैं" और यदि इस क्षेत्र में कोई घटना घटती है—अर्थात् सम्बन्धित देशों की सीमा के बाहर—तो वे इच्छानुसार कोई भी कदम उठा सकते हैं।...क्या मैं पुराने दिनों का स्मरण करा सकता हूँ जब बड़े और शक्तिशाली राष्ट्रों के पास एशिया में तथा अन्य जगह "अपना प्रभाव क्षेत्र" था और जब एशिया के देश कुछ भी कर सकने के लिए अत्यन्त दुर्बल थे। झगड़ा बड़ों राष्ट्रों में था और इसलिए कभी-कभी उन्होंने प्रभाव क्षेत्रों के देशों का बँटवारा करने के लिए समझौता भी किया था। मुझे ऐसा लगता है कि मनीला सन्धि का रुख खतरनाक ढंग से शक्तिशाली राष्ट्रों द्वारा प्रभाव क्षेत्र के अधिकार का उपयोग करने की दिशा की ओर ही है क्योंकि अन्तोगत्वा बड़े और शक्तिशाली देश ही निपटारा करेंगे न कि तीन कमजोर और छोटे एशियाई देश जिनका मैत्री सम्बन्ध उनसे हो सकता है।"

"दूसरी बात जो मैं कहना चाहता हूँ, वह यह है, इस सन्धि में आक्रमण की ओर निर्देश किया गया है। इसका मतलब बाह्य हस्तक्षेप से हो ही सकता है। इसके साथ ही सन्धि-क्षेत्र में उत्पन्न ऐसी स्थिति की ओर भी निर्देश किया गया है जो उन्हें हस्तक्षेप करने का अधिकार दे सकती है। अब इन शब्दों को देखिये—'इस क्षेत्र में सशस्त्र-आक्रमण के अलावा किसी तथ्य या स्थिति से उत्पन्न संकट।' यह बाह्य आक्रमण नहीं है। कहने का तात्पर्य यह कि किसी आन्तरिक बात के कारण भी सन्धि में शामिल देशों को हस्तक्षेप करने का अधिकार है। इस क्षेत्र के देशों की अखंडता, प्रभुसत्ता और स्वतंत्रता की धारणा पर क्या इससे प्रभाव नहीं पड़ता? मनीला सन्धि के अधिकतर भाग में बातें बड़ी अच्छी कही गयीं है। इससे संयुक्त राष्ट्रसंघ के घोषणा-पत्र के मुहावरे हैं, शांति के सम्बन्ध में उसकी इच्छा के बारे में कहा गया है। औपनिवेशिक क्षेत्रों में स्वशासन को प्रोत्साहन देने की भी बात कही गयी है; शर्त यह है कि ये क्षेत्र तैयार हों तथा स्वशासन के बोझ को सँभाल सकने में समर्थन हों। मैंने इसे ध्यान से पढ़ा है। मनीला सन्धि की पूरी दृष्टि न केवल गलत है बल्कि किसी भी एशियाई देश की दृष्टि से खतरनाक भी है।"

नेहरू जी के इस भाषण में कही गयी बातों और चीन के प्रधान मन्त्री द्वारा प्रथम राष्ट्रीय लोक कांग्रेस के समक्ष २७ सितम्बर, सन् १९५४ को प्रस्तुत की गयी मलीना सन्धि से सम्बन्धित बातों की तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि संधि के सम्बन्ध में नेहरू जी और चाओ की धारणाओं में काफी हद तक समानता है। चीन के सम्बन्ध में नेहरू जी की नीति का अध्ययन करने के लिए यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य है जिसकी उपेक्षा किसी भी भाँति नहीं की जा सकती।

नेहरू जी की चीन-यात्रा

चीन लोक गणतन्त्र के प्रधान मन्त्री श्री चाओ एन लाइ ने अपनी भारत यात्रा के समय नेहरू जी को चीन आने का निमन्त्रण दिया था। नेहरू जी ने इसे स्वीकार कर लिया था। वह अक्तूबर, सन् १६५४ के प्रथम सप्ताह में चीन गये थे। यह ऐतिहासिक यात्रा थी। इससे न केवल चीन-भारत मैत्री के बन्धन दृढ़ हुए अपितु अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ा। चीनी प्रधान मन्त्री चाओ एन लाइ की भारत-यात्रा के समय अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर चीन-भारत मैत्री के जिस प्रभाव का सूत्रपात हुआ था, उसने नेहरू जी की यात्रा के कारण जड़ पकड़ ली। यद्यपि यह सही है कि एशिया के दोनों प्रधान मन्त्रियों की आपसी वार्ता की कोई अधिकृत रिपोर्ट प्रकाशित नहीं हुई तथापि इसका अन्दाज नेहरू जी द्वारा भारत की लोकसभा के समक्ष २६ अगस्त, सन् १६५४ को किये गये भाषण, २० अक्तूबर, सन् १६५४ को पीकिंग में नेहरू जी के सम्मान में आयोजित भोज में श्री चाओ एन लाइ के भाषण, चीन से लौटने के बाद कलकत्ते के दस लाख नागरिकों के समक्ष नेहरू जी द्वारा किये गये भाषण तथा अन्त में चीन-यात्रा के सम्बन्ध में लोक सभा में किये भाषण से भली भाँति लगाया जा सकता है।

अपनी चीन-यात्रा से लगभग दो सप्ताह पूर्व नेहरू जी ने एक ऐसा प्रश्न उठाया था जिसकी ओर न केवल दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों की आँखें खिची बल्कि पश्चिमी देशों में भी जिसकी व्यापक प्रतिक्रिया हुई थी। यह प्रश्न था चीन से बाहर अन्य देशों में निवास करने वाले चीनियों की राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में। जाहिर है कि दक्षिण-पूर्वी एशिया के कुछ देशों में इस प्रश्न का रूप बड़ा विकट है। उदाहरणार्थ मलाया को लिया जा सकता है। वस्तुतः

मलाया पर ब्रिटेन का कब्जा है लेकिन यह कह सकना आसान नहीं है कि मलाया के मूल निवासी अँग्रेजों से अधिक सशंक हैं अथवा चीनियों से। मलाया में उसके मूल निवासियों की अपेक्षा चीनियों की संख्या काफी अधिक है। ऐसी दशा में स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि लोकतांत्रिक शासन की प्रतिष्ठा के बाद मलाया पर वास्तव में किसका शासन होगा? यह प्रश्न आसान नहीं है। इसके दो कारण हैं, पहला कारण तो यह है कि इसमें अन्य राष्ट्रों के आन्तरिक मामले मे चीन के अप्रत्यक्ष हस्तक्षेप की जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष हस्तक्षेप से तनिक भी कम न होगा, गुञ्जाइश निहित है और दूसरा कारण यह है कि इस गुञ्जाइश की आड़ में अपनी औपनिवेशिक सत्ता की जड़ जमाये रहने की कोशिश करते रहने का मौका साम्राज्यवादी देशों को मिलता है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि अपनी चीन-यात्रा से पूर्व दूसरे देशों में चीन के निवासियों की राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में नेहरू जी द्वारा उठाये गये प्रश्न की व्यापक प्रतिक्रिया—पूर्व और पश्चिम में—स्वाभाविक थी।

कहा जा सकता है कि यह ऐसा प्रश्न न था। जिसकी ओर चीनी लोक गणतन्त्र की सरकार ने नेहरू जी द्वारा ध्यान आकृष्ट किये जाने से पूर्व विचार न किया हो अथवा इस सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त न किया हो। लेकिन इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता, यों कठहुज्जती की गुंजाइश सब जगह रहती है। लेकिन ऐतिहासिक घटनाओं का विश्लेषण इस पर आधारित नहीं होता। वह आधारित होता है तथ्यों पर। चीन से बाहर रहने वाले चीनियों का प्रश्न उठा कर नेहरू जी ने वास्तव में चीन के प्रति अपने मैत्री-भाव का ही परिचय दिया था और चीन ने इसे स्वीकार भी किया था। यह चीन की नीति के अनुकूल ही रहा, क्योंकि इससे इनकार कर चीन एशियाई देशों से मित्रता स्थापित करने की अपनी नीति को किसी भी दशा में चरितार्थ नहीं कर सकता था। चीनियों की आबादी वाले देशों की शंका का समाधान करना उसका कर्तव्य था। इस कर्तव्य का निर्वाह प्रश्न को टाल कर या उसकी उपेक्षा करके नहीं किया जा सकता था।

अन्य देशों में आबाद चीनियों की समस्या के सम्बन्ध में अपनी चीन-यात्रा के समय नेहरू जी का मत क्या था? उनके ही शब्दों में यह इस प्रकार है—

"एशियाई देशों या दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों के चीन से भयभीत होने के कारणों में एक कारण इन देशों में बहुत बड़ी संख्या में आबाद चीनी भी रहे हैं। मलाया की भाँति कुछ देशों में बहुत कठिन समस्या उत्पन्न होती है। यहाँ उपस्थित सब लोग, मेरा विश्वास है कि मलाया की स्वतन्त्रता के पक्ष में है। यह सच है, लेकिन याद रखिए कि मलाया की यह समस्या आसान नहीं है। यह कठिन है; क्योंकि मलाया में मलाया-निवासी अल्पसंख्यक हैं। इससे कठिनाइयाँ और उलझनें उत्पन्न होती हैं। अलग-अलग किसी भी जाति के लोगों का बहुमत नहीं है, चीनियों की संख्या बहुत बड़ी है; भारतीय दस या पन्द्रह फी सदी हो सकते हैं। मलाया के मूल निवासी ऐसी किसी बात में दिलचस्पी नहीं रखते जिससे बाहरी लोगों को शक्ति मिल सकती हो। मैं केवल दिक्कतों की ओर संकेत कर रहा हूँ जिन्हें हमें समझना चाहिए। तथ्यों के बिना विशुद्ध तर्क की दृष्टि से समस्या पर विचार करने से कोई लाभ नहीं है। मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह यह है। बर्मा, हिन्द-एशिया, हिन्द-चीन और थाईलैण्ड में चीनी बहुत बड़ी संख्या में हैं जो इनमें भय उत्पन्न करते हैं। पुराने जमाने से अब तक चीन सरकार ने चीन की राष्ट्रीयता से अपने को पृथक कर लेने के किसी चीनी के अधिकार को मान्यता नहीं प्रदान की। इससे बड़ी विचित्र स्थिति पैदा हो गयी थी। कभी-कभी किसी न किसी प्रकार की दोहरी राष्ट्रीयता रही। दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों में रहने वाले चीनियों की स्थिति को इन देशों के लिए परेशानी से भरी हुई बनाने वाला यह भी एक कारण था।"[1]

इस भाषण से पूर्व चीन के भाग्य विधाताओं ने यह तो संकेत किया था कि चीन सरकार चीन से बाहर अन्य देशों में निवास करने वाले चीनियों की राष्ट्रीयता की समस्याओं को हल करना चाहती है और वह इसे पुराने ढंग से नहीं किन्तु नये उपायों द्वारा हल करेगी लेकिन इस सम्बन्ध में उनका मत सामने नहीं आया था। इस समस्या पर चीन सरकार द्वारा स्पष्टतः अपना मत नेहरू जी के उपर्युक्त कथन के बाद ही व्यक्त किया गया मिलता है। अधिकृत रूप में इसका उल्लेख उस रिपोर्ट में मिलता है जो चीनी लोक

१. भारत की लोक सभा में नेहरू जी का भाषण—२६ अगस्त, १९५४।

गणतन्त्र के प्रधान मन्त्री श्री चाओ एन लाई ने चीनी लोक गणतन्त्र की लोक कांग्रेस के प्रथम राष्ट्रीय अधिवेशन में २३ सितम्बर, १९५३ को प्रस्तुत की थी। रिपोर्ट में जो कुछ कहा गया है, उससे नेहरू जी द्वारा उठाये गये प्रश्न की महत्ता स्वतः सिद्ध हो जाती है। रिपोर्ट का सम्बन्धित अंश इस प्रकार है—"प्रवासी चीनियों की संख्या लगभग १२ करोड़ है। जिन देशों में वे रहते हैं वहाँ के निवासियों के साथ वर्षों से उनका सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध है। उन्होंने तत्स्थानी आर्थिक विकास एवं वहाँ सम्पन्नता लाने में योगदान किया है। प्रवासी चीनी अपने देश को बहुत प्यार करते हैं। आमतौर पर जिन देशों में वे रहते हैं, वहाँ की राजनीतिक क्रियाशीलता में वे भाग नहीं लेते। पिछले कुछ वर्षों से वे उन देशों में बड़ी कठिन परिस्थितियों में रह रहे हैं जिनका सम्बन्ध चीन से मैत्रीपूर्ण नहीं है। हम आशा करते हैं कि ये देश प्रवासी चीनियों से भेद-भाव का बर्ताव न करेंगे और उनके न्यायपूर्ण अधिकारों एवं स्वार्थों का आदर करेंगे। अपनी ओर से हम प्रवासी चीनियों से यह अनुरोध करने के इच्छुक हैं कि वे जिन देशों में रह रहे हैं, वहाँ की सरकारों के कानूनों तथा सामाजिक रीति-रिवाज का आदर करें। यह उल्लेखनीय है कि प्रवासी चीनियों की राष्ट्रीयता के प्रश्न को हल करने की चेष्टा, चीन की प्रतिक्रियावादी सरकारों ने कभी नहीं की। इससे प्रवासी चीनियों की स्थिति दुरूह हो गयी और बहुधा चीन और सम्बन्धित देशों के बीच मन-मुटाव पैदा हो गया। इस स्थिति को सुधारने के लिए हम इस प्रश्न का निपटारा करने को तैयार हैं और सर्वप्रथम हम दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों के साथ जिन्होंने हम से राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित कर लिया है, इसका निपटारा करने को तैयार हैं।"[1]

जिन अन्य बातों की दृष्टि से नेहरू जी की चीन-यात्रा महत्त्वपूर्ण मानी गयी, उनका उल्लेख चीन के प्रधान मन्त्री चाओ एन लाई तथा चीनी लोक-गणतन्त्र के अध्यक्ष श्री माओत्सेतुङ्ग ने स्वयं भी किया था। आम जनता पर भी इसका व्यापक प्रभाव पड़ा। दस-दस लाख चीनियों ने सड़क पर अनुशासित ढङ्ग से

१. चाओ एन लाई—'रिपोर्ट आन दि वर्क आव-गवर्नमेण्ट'—पृ० सं० ४५।

एकत्र होकर नेहरू जी का अभिनन्दन किया था। मंचूरिया और दरेन में स्थित चीन के इस्पात तथा नौसेना के कारखानों का निरीक्षण करने का अवसर चीन सरकार ने नेहरू जी को दिया था जब कि रूसियों के अलावा कोई अन्य विदेशी इन्हें नहीं देख सका था। नेहरू जी द्वारा चीन की ओर बढ़ाये गये मित्रता के हाथ का यह प्रतिदान उचित ही था। चीनी लोक-गणतन्त्र की सरकार इसके लिए क्यों तैयार हुई? इस प्रश्न का उत्तर चीन के प्रधान और परराष्ट्र-मन्त्री श्री चाओ एन लाई के उस भाषण में मिलता है जो उन्होंने नेहरू जी के सम्मान में २० अक्तूबर, १९५४ को पीकिंग में आयोजित भोज में किया था। चीन के प्रधान मन्त्री ने कहा था –"नेहरू जी ने गांधी जी के साथ, भारत की स्वाधीनता के लिए जो कठोर संघर्ष किये हैं, हम चीन के लोग उनसे भलीभाँति परिचित हैं। श्री नेहरू की चीनी जनता के स्वाधीनता और स्वतन्त्रता के ध्येय से बहुत दिनों से सहानुभूति रही है। जिस समय चीनी जनता जापान के विरुद्ध युद्धरत थी, श्री नेहरू ने जापानी आक्रमण के प्रतिरोध में चीन की एकता के लिए बड़ी चिन्ता प्रकट की थी। चीनी लोक गणतन्त्र की स्थापना के बाद भारत ने, प्रधान-मन्त्री नेहरू के नेतृत्व में, हमारे देश के साथ तुरन्त कूटनीतिक सम्बन्ध (डिप्लोमैटिक रिलेशंस) स्थापित कर लिये, अन्य शान्ति प्रिय देशों के साथ भारत ने भी कोरियाई विराम-सन्धि का समर्थन किया और उसे सम्पन्न कराने में सहायता पहुँचाई। अभी कुछ दिनों पूर्व भारत ने, अन्य कोलम्बो शक्तियों के साथ, हिन्दचीन में फिर से शान्ति स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण योग दिया था। इस समय भारत, पोलैण्ड और कैनेडा के साथ, हिन्द-चीन में विराम-सन्धि के निरीक्षण का कार्य पूरा कर रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में चीनी लोक गणतन्त्र के न्यायोचित स्थान के लिए भारत निरन्तर अपनी आवाज उठा रहा है। चीनी जनता के लिए यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि उसे शान्ति की रक्षा के समान ध्येय में भारत जैसा मैत्री रखनेवाला पड़ोसी और प्रधान मन्त्री नेहरू जैसा महान् मित्र मिला है। भारत और चीन दोनों एशिया की महान् शक्तियाँ है। ये दोनों देश संसार के प्राचीन और साथ ही तरुण देश हैं। दो हजार वर्षों से भी अधिक समय से भारत और चीन के

बीच गहरे सांस्कृतिक और आर्थिक सम्बन्ध रहे हैं और इन दोनों के बीच युद्ध होने का उल्लेख इतिहास में कभी भी नहीं मिलता।"

नेहरूजी ने भी अपनी चीन-यात्रा के दौरान में अपने दिल और दिमाग को पूरी तरह खोल कर चीन-निवासियों के सामने रख दिया था। उनकी भावनाओं में यदि एक ओर प्राचीन ऐतिहासिक सम्बन्धों की स्मृति छाई हुई थी तो दूसरी ओर वर्तमान की आवश्यकताओं की ओर संकेत भी था। १९ अक्तूबर, सन् १९५४ को पीकिंग के हवाई अड्डे पर पहुँच कर नेहरूजी ने जो उद्गार प्रकट किये थे, वे उनकी वास्तविक मनोदशा और इच्छाओं को व्यक्त करने वाले थे। उनमें आत्मीयता कूट कूट कर भरी थी। वर्तमान की ऐतिहासिक आवश्यकता भी अछूती नहीं रह गयी थी। भाव पुराने थे। शब्द भी नये नहीं थे। फिर भी उनमें नया जीवन, नयी स्फूर्ति और नयी चेतना तरंगित होती दिखाई देती थी।

नेहरूजी का भाषण इस प्रकार था—

"इस महान देश की यात्रा करने की बड़े दिनों से मेरी इच्छा थी। मुझे खुशी है कि आज वह इच्छा पूरी हो रही है।"

"इतिहास के आरम्भ से ही भारत और चीन में पूरी मित्रता और आपसी मेल जोल रहा है। दोनों देशों में अनेक सम्पर्क रहे हैं—सांस्कृतिक, व्यापारिक और धार्मिक। फिर भी, पिछली कुछ शताब्दियों में सद्भावना के इस आदान-प्रदान में कुछ विघ्न पड़ गया था। लेकिन, इतिहास का वह दौर भी समाप्त हो गया है और अब हम पुराने सम्बन्धों को पुनर्जीवित कर रहे हैं।

"हमारे लिए एक दूसरे को समझना और अपनी ऐतिहासिक मित्रता को और पुष्ट करना बहुत ही आवश्यक है। चीन और भारत महान् देश हैं। इन की समस्याएँ समान हैं। ये दृढ़ता के साथ प्रगति-पथ पर आगे बढ़ रहे हैं। दोनों एक दूसरे को जितना ही समझेंगे उतना ही न केवल एशिया का बल्कि समस्त संसार का कल्याण होगा। आज विश्व में जो तनाव है, उसे देखते हुए यह आवश्यक है कि हम शांति के लिए मिल-जुल कर काम करें।"

"मुझे आशा है कि चीन की मेरी यह यात्रा हमें एक दूसरे के और निकट लायगी और हम शांति के लिए दूने उत्साह से काम करेंगे।"

"मैं आपके लिए भारतीय जनता की बधाइयाँ और शुभ कामनाएँ लाया हूँ। मुझे चीन आये केवल एक दिन हुआ है लेकिन कैंटन और हाँको में मेरा जो स्नेहपूर्ण और स्वच्छन्द स्वागत हुआ, वह अर्थ-पूर्ण है। आपने जो स्नेहपूर्ण भावनाएँ प्रकट की हैं, उनके लिए मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।" १

२३ अक्तूबर, १९५४ को पीकिंग में आयोजित सार्वजनिक सभा में नेहरू जी ने जो भाषण किया था, वह ऐतिहासिक भाषण है। इसमें उन्होने अतीत की सुखद स्मृतियों, वर्तमान की जिम्मेदारियों और भविष्य की कल्पनाओं का उल्लेख प्रभावशाली ढंग से किया था। चीन और भारत के प्राचीन पारस्परिक सम्बन्ध के संदर्भ में वर्तमान सम्बन्ध के निरूपण की दृष्टि से यह भाषण बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह पूरा भाषण २३ अक्तूबर के शिङ्ख-हुवा समाचार में प्रकाशित हुआ था। चीन के भारत-स्थित दूतावास के सांस्कृतिक-सूचना कार्यालय द्वारा प्रकाशित समाचार बुलेटिन संख्या ४७।१९५४ में यह भाषण जिस रूप में उद्धरित किया गया था, वह इस प्रकार है—

'श्रीयुत मेयर तथा पीकिंग निवासियों, चार दिन पहले मैं आपके इस प्राचीन और ऐतिहासिक नगर में आया था। आप लोगों ने मेरा बहुत ही शानदार स्वागत किया है। मित्रता, सत्कार और प्रेम ने इन चार दिनों से मुझे घेर रखा है और गद्-गद् कर दिया है। इसका मुझपर जो गहरा प्रभाव पड़ा है, उसे मैं आपके आगे व्यक्त नहीं कर सकता। एक दूसरे देश से आने वाले यात्री के प्रति प्रेम-पूर्ण स्वागत का यह प्रदर्शन काफी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह किसी चीज का प्रतीक है।'

'मैं इस महान् देश चीन में, जो स्वयं एक छोटा सा संसार है, एक दूसरे महान् देश से आया हूँ जो स्वयं भी एक छोटा संसार है। दोनों की जड़ें अतीत में बड़ी गहरी चली गयी हैं। इतिहास के आरम्भ से ही दोनों, युगयुगा-

१. शिङ्ख हुवा समाचार—१९ अक्तूबर (चीन के दूतावास के सांस्कृतिक सूचना कार्यालय का बुलेटिन संख्या ४६—१९५४ से उद्धरित)।

न्तर में, विचार और संस्कृति की अगणित बाहरी धाराओं को ग्रहण करते रहे हैं, पचाते रहे हैं और उन पर अपने शक्तिशाली व्यक्तित्व की छाप डालकर उन्हें अपने रंग में रंगते रहे हैं। वे अपने आप को समय-समय पर बदलते रहे हैं और और परिस्थितियों के अनुकूल बनाते रहे हैं। और अब दमन के लम्बे अर्से के बाद, वे फिर बदले हैं और विभिन्न रूपों में फल-फूल रहे हैं। चीन और भारत में हुए ये नये क्रान्तिकारी परिवर्तन, विषय वस्तु की दृष्टि से भिन्न होते हुए भी एशिया की नयी आत्मा के और उस नयी शक्ति के प्रतीक हैं जो आज एशिया के देशों में प्रस्फुटित हो रही है। हमारे इन दोनों देशों के सामने आज बड़ी बड़ी समस्याएँ हैं और हम दृढ़ता तथा आत्म-विश्वास के साथ एवं अपने-अपने देश का निर्माण करने और अपनी विशाल आबादी को सुखी और संतुष्ट करने की दृढ़ इच्छा के साथ, उनका सामना कर रहे हैं। एशिया के प्रत्येक देश की इच्छा आज यही है।

'हमें किसी भी देश या वहाँ के लोगों से कोई द्वेष नहीं है। हम संसार में शांति-पूर्वक रहना चाहते हैं। यद्यपि हमें पिछले वर्षों में औरों के हाथों बहुत कुछ कष्ट सहना पड़ा है, तथापि मुझे आशा है कि हम उनके प्रति बैर-भाव न रखेंगे और अन्य लोग भी हमारे मामले में हस्तक्षेप न करेंगे।'

'दोनों देशों में से प्रत्येक को अपनी-अपनी स्वाभाविक प्रतिभा और परिस्थितियों के अनुसार अपना-अपना रास्ता चुनना पड़ा है। हमने अपनी-अपनी स्वतंत्रता भिन्न-भिन्न मार्गों द्वारा प्राप्त की। हमारा यह सौभाग्य रहा है कि हमने भारत में स्वतंत्रता शांति-पूर्ण उपायों द्वारा और शांति-पूर्ण समाधान द्वारा प्राप्त की और आज उन लोगों के प्रति, जो हम पर शासन करते थे, हमारे मन में कोई दुर्भावना नहीं है। चीन का स्वातंत्र्य युद्ध अधिक कठोर और अधिक संघर्ष-पूर्ण रहा है।

स्वतंत्र और प्रभुसत्ता सम्पन्न देशों के रूप में 'चीन और भारत' का उद्भव तथा एशिया के अन्य देशों को प्राप्त स्वतंत्रता ने इस प्राचीन महाद्वीप का नक्शा ही बदल डाला है। शक्तियों का वह पुराना संतुलन जिसके कारण एशिया

पराधीन था, समाप्त हो चुका है और पीड़ा एवं संघर्ष के बीच धीरे-धीरे एक नया संतुलन पैदा हो रहा है।

'राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों से वे बड़े-बड़े परिवर्तन हुए हैं। धीरे धीरे एक और जबरदस्त क्रान्ति जन्म ले रही है। हम एक नये युग की ड्योढ़ी पर खड़े हैं जिसमें मानव आणविक शक्ति से प्राप्त होने वाली जबरदस्त शक्तियों का स्वामी होगा। जिस प्रकार औद्योगिक क्रान्ति ने जो लगभग दो सौ वर्ष पहले आरम्भ हुई थी, दुनिया का नक्शा बदल डाला था, उसी प्रकार मौजूदा पीढ़ी में हम उससे भी बड़ा परिवर्तन देखने वाले हैं।'

'आज की समस्याओं को हमें इस महान् पृष्ठ-भूमि में और इन परिस्थितियों में देखना है। ये जबरदस्त शक्तियाँ संसार को नष्ट भी कर सकती हैं और मानव-जाति को कल्याण के कल्पनातीत स्तरों तक भी ले जा सकती हैं।'

'आज संसार को महत्त्वपूर्ण चुनाव करना है—शान्तिपूर्ण प्रगति और युद्ध, इनमें से एक को उसे चुनना होगा। यह युद्ध पुराने तरह के युद्धों की तरह न होगा बल्कि उनसे बहुत अधिक बुरा और विनाशकारी होगा। यह हमारी पूरी सभ्यता को नष्ट कर सकता है और मानव को पशु के स्तर तक गिरा सकता है।

'इस प्रश्न का केवल एक ही उत्तर हो सकता है और वह यह कि युद्ध टाला जाय। लेकिन, युद्ध को टालना ही काफी नहीं है। हमें युद्ध को जन्म देने वाले कारणों को समाप्त करना है और शान्ति तथा सद्भावना के वातावरण को सक्रिय रूप से बढ़ाना है। भय, बैर और हिंसा ने मानव के हृदय को बहुत दिनों तक अन्धकार में रखा है। हिंसा, हिंसा को जन्म देती है, बैर मनुष्य का पतन करता है और उसे जड़ बनाता है। भय एक बुरा साथी है। हमें विरोध के इस चक्र से बाहर निकलना है और मैत्री पूर्ण सहयोग के आधार पर एक नया संसार बनाने का प्रयत्न करना है—एक ऐसा संसार जिसमें एक देश पर दूसरे देश का, एक वर्ग पर दूसरे वर्ग का, एक नस्ल पर दूसरी नस्ल का न तो शासन होगा, न शोषण। मैं हृदय से यह आशा करता हूँ कि इस नये संसार के निर्माण के

लिए हमारे जो तरीके होंगे वे शान्ति और सहयोग के होंगे, क्योंकि मुझे विश्वास है कि बुरे और हिंसापूर्ण तरीकों के अच्छे नतीजे नहीं हो सकते।

'चीन एक स्वाभिमानी देश है जिसकी संस्कृति युगों पुरानी है। वह अपनी नयी स्वाधीनता और शक्ति पर प्रसन्न है एवं भविष्य की ओर आशा और विश्वास के साथ देख रहा है। एक व्यक्ति की हैसियत से मेरा कोई महत्त्व नहीं है। लेकिन, मुझे भी अपने देश और उसकी विरासत पर गर्व है। अपने देश और जनता के प्रतिनिधि की हैसियत से मैं भविष्य के बारे में शक्ति और विश्वास के साथ बातें कर सकता हूँ। हमारे सामने जो महान् समस्याएँ हैं, वे आत्माभिमान, मिथ्या राष्ट्रीय अभिमान और हठधर्मी की अपेक्षा नहीं करतीं। वे अपेक्षा रखती हैं इस बात की कि सभी राष्ट्रों में—चाहे वे बड़े हों या छोटे और चाहे उनका सम्बन्ध किसी भी महाद्वीप से क्यों न हो—परस्पर मेल-जोल और मैत्रीपूर्ण सहयोग की भावना हो। इसलिए, मैं इन समस्याओं का, गर्व की भावना से नहीं, बल्कि नम्रतापूर्वक सामना करता हूँ। इस आण-विक युग में, जो अभी आरम्भ हो रहा है, पुराने द्वेषों और झगड़ों के लिए कोई स्थान नहीं है। यदि इस संसार को और इसकी उपलब्धियों को बचाना है तो हमें और ढङ्ग से सोचना और काम करना होगा।

'आज बड़े-बड़े राष्ट्र एक-दूसरे के विरुद्ध हैं और यह कहा जाता है कि पूर्व और पश्चिम में परस्पर झगड़ा है। लोग निरस्त्रीकरण की बातें करते हैं लेकिन प्रत्येक बड़ा राष्ट्र अपनी सैनिक शक्ति बढ़ा रहा है। युद्ध के नये और भयानक हथियार बनाये जा रहे हैं। यह शान्ति का रास्ता नहीं है। हमें यह मान लेना चाहिये कि संसार में रहने का केवल एक ही तरीका है, वह है सहअस्तित्त्व का, सहयोग का और अपनी इच्छानुसार रहने के प्रत्येक राष्ट्र के अधिकार को स्वीकार करने का। भविष्य में पूर्व और पश्चिम एक दूसरे के विरुद्ध न हो सकेंगे। केवल एक संसार होगा जो अपने विभिन्न भागों में मैत्रीपूर्ण सहयोग रखते हुए मानव-जाति की उन्नति के लिए कार्य करेगा। हाल ही में हुए जनेवा समझौते ने, जिनमें चीन के प्रतिनिधियों ने इतनी प्रमुख भूमिका अदा की, और जिससे हिन्द चीन में शान्ति कायम हो सकी, कठिन समस्याओं को बातचीत के द्वारा

शान्तिपूर्वक ढङ्ग से सुलझाने की राह हमें दिखा दी है। इस तरीके को हमें दूसरी समस्याओं पर भी लागू करना चाहिये—इसमें कठिनाइयाँ ही क्यों न हों और चाहे यह रास्ता लम्बा ही क्यों न हो। यह वह रास्ता है जिस पर हम चल सकते हैं।'

'चीन और भारत की ओर से जिन पाँच सिद्धान्तों की घोषणा की गयी है, वे इस नये दृष्टिकोण की बुनियाद हैं। मुझे पूरा यकीन है कि न केवल एशिया के लोग बल्कि दूसरे देशों के लोग भी उन्हें स्वीकार करेंगे और उन पर अमल करेंगे। इस प्रकार, हम शान्ति क्षेत्र को विस्तृत करेंगे तथा युद्ध के भय और मौजूदा तनाव को दूर करेंगे।

'मैं आपके पास शान्ति और सद्भावना का दूत बनकर आया हूँ। मैंने यहाँ शान्ति और सद्भाव की भावना देखी है। मुझे अपने चारों ओर ऐक्य का अनुभव हो रहा है। सुखद भविष्य में मेरा विश्वास और दृढ़ हो गया है। भारत और चीन मिलकर विश्व में शान्ति स्थापित करने में सफल हों, यह मेरी कामना है।'

भारत-चीन के पारस्परिक सम्बन्ध के निरूपण में नेहरूजी का योगदान विशिष्ट है। यह नैतिक मान्यताओं, इतिहास की शिक्षा और मानव समाज के हित की दिशाओं के सही मूल्यांकन पर आधारित है। चीन के जन-नेताओं ने स्वयं यह महसूस किया है। इसकी आवश्यकता तबतक महसूस की जाती रहेगी जब तक मानव समाज कायम रहेगा और उसके नियमन, नियंत्रण तथा राष्ट्र की व्यवस्था की आवश्यकता महसूस की जाती रहेगी।



पेकिंग के मेयर श्री पंगचेन पं० नेहरू का अभिवादन कर रहे हैं

खण्ड : २

चीन के प्रधान मन्त्री श्री चाऊ एन लाई की दिल्ली-यात्रा और भारत के प्रधान मन्त्री श्री नेहरू की चीन-यात्रा कालीन महत्त्व-पूर्ण भाषण और संदेश आदि ।

प्रधानमंत्री चाओ एन-लाई द्वारा, नयी दिल्ली के हवाई अड्डे पर दिया गया वक्तव्य

प्रधान मन्त्री चाओ एन-लाई ने, २५ जून १६५४ को, नयी दिल्ली के हवाई अड्डे पर पहुँचने पर निम्नलिखित वक्तव्य दिया था—

मानानीय प्रधान मन्त्री जी, देवियो और सज्जनो !

प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू के निमन्त्रण पर, मुझे आज अपने इस महान् पड़ोसी देश में आने का अवसर प्राप्त हुआ है जिसके कारण मैं अत्यन्त गौरव अनुभव कर रहा हूँ। केन्द्रीय लोक सरकार और चीनी लोक गणतन्त्र की जनता की ओर से मैं भारतीय सरकार और जनता का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

चीनी लोक गणतन्त्र की केन्द्रीय लोक सरकार और जनता, भारतीय सरकार और जनता की मित्रता को बहुमूल्य समझती है। चीन और भारत के ६६ करोड़ लोगों की मित्रता और पारस्परिक शान्ति, एशिया और शान्ति की सुरक्षा में महत्त्वपूर्ण योग दे रही है।

मेरी कामना है कि—

चीन और भारत की मित्रता दिन-प्रति-दिन और उन्नति करे ;
एशियाई लोगों की एकता दिन-प्रतिदिन और मजबूत हो ;
विश्व शान्ति दिन-प्रति-दिन और पुष्ट हो।

प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू की ओर से आयोजित स्वागत-भोज में प्रधान मंत्री चाओ एन-लाई का भाषण

प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू की ओर से २६ जून १६५५ को, प्रधान मंत्री चाओ एन-लाई के सम्मान में एक भोज का आयोजन किया गया था। प्रधान मन्त्री चाओ एन-लाई ने इस अवसर पर निम्नलिखित भाषण किया था।

माननीय प्रधान मन्त्री जी, देवियो और सज्जनो!

महामान्य प्रधान मन्त्री नेहरू के निमन्त्रण पर भारत आने पर मुझे भारत सरकार और भारतीय जनता का हार्दिक स्वागत और उत्साहपूर्ण आतिथ्य-सत्कार प्राप्त हुआ है। प्रधान मन्त्री नेहरू ने इस भोज का आयोजन कर, मुझे अपने प्रतिष्ठित मित्रों से मिलने का अवसर प्रदान किया है जिसके कारण मैं अत्यन्त गौरव और आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ। माननीय प्रधान मन्त्री जी, मैं आपके प्रति और आपके द्वारा भारत की सरकार और जनता के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

चीन और भारत में दो हजार वर्षों से परम्परागत मित्रता चली आ रही है। भारतीय गणराज्य और चीनी लोक गणतन्त्र के बीच समानता, परस्पर-लाभ और एक दूसरे की प्रादेशिक अखण्डता और प्रभुसत्ता के सम्मान के आधार पर कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित हो जाने से, दोनों देशों के लोगों की इस मित्रता में पिछले कुछ वर्षों में नयी उन्नति हुई है।

चीनी सरकार और जनता, भारतीय सरकार और जनता की मित्रता को बहुत ही महत्वपूर्ण समझती है। हमारे दोनों देशों के सम्बन्ध दिन-प्रति-दिन और मजबूत हो रहे हैं और सांस्कृतिक और आर्थिक नाते बराबर बढ़ रहे हैं। खास तौर पर, इस साल अप्रैल में चीन और भारत के बीच, चीनी तिब्बत प्रदेश और भारत के पारस्परिक व्यापार और आवागमन के सम्बन्ध में, जो समझौता हुआ है, उसने न केवल चीन-भारत मित्रता में और सुधार किया है, बल्कि हमारे दोनों देशों के सम्बन्धों के निम्नलिखित सिद्धान्तों पर भी प्रकाश डाला है: एक दूसरे की प्रादेशिक अखण्डता और प्रभुसत्ता का सम्मान करना, दूसरे के विरुद्ध आक्रामक कार्रवाई न करना, एक दूसरे के अन्दरूनी

मामलों में हस्तक्षेप न करना, समानता, परस्पर-लाभ और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति का पालन करना।

इस प्रकार इस समझौते ने राष्ट्रों की पारस्परिक समस्याओं को बातचीत द्वारा सुलझाने का एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया है।

चीन और भारत दोनों शान्तिप्रिय देश हैं। चीनी जनता को इस बात पर बड़ी खुशी है कि उसका पड़ोसी, भारत जैसा देश है, जो शान्ति के उद्देश्य में संलग्न है। कोरियाई विराम-सन्धि सम्पन्न कराने के लिए जो प्रयत्न किये गये हैं, उनमें भारत का अमूल्य योग रहा है। हिन्दचीन की लड़ाई को बन्द कराने की कोशिशों में भारत बराबर दिलचस्पी लेता रहा है और जनेवा सम्मेलन में हिन्दचीन में फिर से शान्ति स्थापित करने के लिए जो प्रयत्न किये गये, उनका उसने दृढ़ता से समर्थन किया है। यह बिलकुल स्पष्ट है कि भारत की यह नीति एशिया की शान्ति की सुरक्षा के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है।

एशिया के तमाम लोग शान्ति की इच्छा रखते हैं। एशिया की शान्ति को इस समय जो खतरा है, वह बाहर से है। लेकिन आज का एशिया कल का एशिया नहीं है। वह युग, जब बाहरी शक्तियाँ अपनी इच्छानुसार एशिया के भाग्य का निर्णय कर सकती थीं, सदा के लिए बीत चुका है। हमें विश्वास है कि एशिया के तमाम शान्तिप्रिय राष्ट्रों और लोगों की एकता, जंगबाजों की साजिस को परास्त कर देगी। मुझे आशा है कि चीन और भारत एशिया की शान्ति की सुरक्षा के उच्च उद्देश्य के लिए, परस्पर और भी घनिष्ठ सहयोग स्थापित करेंगे।

माननीय प्रधान मंत्री जी, मैं चीन और भारत के मैत्रीपूर्ण सहयोग के लिए, भारत की राष्ट्रीय समृद्धि के लिए और भारतीय जनता के कल्याण के लिए आपके स्वास्थ्य की कामना में मधुपान करता हूँ।

नेहरूजी का भाषण

२६, जून, १९५४ को श्री चाओ के सम्मान में आयोजित भोजमें श्री नेहरू जी ने जो भाषण किया था, वह अविकल रूप में इस प्रकार है—

जनाब प्रधान मन्त्री जी व हज़रात।

पन्द्रह वर्ष हुए कि मैं चीन गया था और इस इरादे से गया था कि वहाँ मास, डेढ़ मास रहूँगा और मैं उम्मीद करता था कि उस वक्त वहाँ मैं मिस्टर चाओ एन लाई से मिलूँगा। लेकिन, एक अजीब इत्तिफाक हुआ कि मैं वहाँ सिर्फ पाँच-छः दिन ही था कि यूरोप में लड़ाई छिड़ गयी और मुझे यकायक वापिस आ जाना पड़ा। इसलिये मैं आपसे नहीं मिल सका और इस बात का मुझे अफसोस है। अब पन्द्रह वर्ष के बाद मेरी पुरानी ख्वाहिश पूरी हुई है। मुझे इसकी खुशी है कि एक बहुत बड़े आदमी से मेरा मिलना हुआ। लेकिन इसके अलावा यह हमारे मुल्क में, एक बड़ी कौम और एक बड़े मुल्क के नुमाइन्दे की हैसियत से आए हैं, इसलिए हमें और भी खुशी है और हम उनका आदर करते हैं। उनका और हमारा मिलना खाली दो आदमियों का या चन्द आदमियों का मिलना नहीं है, बल्कि एशिया के दो बड़े मुल्कों के नुमाइन्दो का मिलना है। हम चाहें कुछ भी हस्ती रखें लेकिन हमारी नुमायन्दगी की हस्ती एक बड़ी बात है; क्योंकि बड़े मुल्कों की तरफ से हम बोलते हैं। तो इन दो बड़े मुल्कों का मिलना इस तरह से एक तारीखी बात है। आजकल की दुनिया में क्या हो या क्या न हो, यह कहना मुश्किल है। लेकिन चीन और हिन्दोस्तान के एक दूसरे से क्या बर्ताव हो, एक दूसरे से क्या रिश्ते हों, यह भी एक बड़ी बात है, जिसका असर एशिया पर पड़ेगा। और जाहिर है कि कुछ दुनिया पर भी पड़ेगा।

तो, इस वक्त मेरे दिमाग में बहुत सारे खयालात आते हैं। यह खयाल आता है कि हमारे दोनों मुल्कों के पुराने रिश्ते हजारों वर्ष के हैं और इन हजारों वर्षों में बहुत ऊँचा-नीचा हमारे मुल्कों ने देखा है और हमारे हिन्दोस्तान के या चीन के लोग एक दूसरे से अपने मुल्कों में मिले और कितने ही गैर मुल्कों में मिले। लेकिन एक अजीब इत्तिफाक है कि इन हजारों वर्षों में ये दोनों कौमें, बड़ी शानदार कौमें, दूर-दूर दुनिया में फिरती रहीं और अपना पैगाम, अपने खयालात, अपने विचार, अपने साहित्य, अपने धर्म और अपनी कलाओं को जगह-जगह ले जाती रहीं लेकिन कभी भी इन हजारों वर्षों में इन दोनों मुल्कों में लड़ाई नहीं हुई। शायद ऐसी मिसाल दुनिया के इतिहास में मिलनी मुश्किल है। पड़ोसी मुल्क आस-पास रहते हों, एक दूसरे से ताल्लुक रखते हों

और हिन्दोस्तान के और चीन के लोग एशिया के कितने मुल्कों में जाते रहे हों, लेकिन हमारा इतिहास, हमारी तवारीख कोई लड़ाई की चर्चा नहीं करता यह पुराने जमाने की बात थी, लेकिन आजकल के जमाने में यह याद करने की बात है; क्योंकि हम इस वक्त पेंच में पड़े हैं और मालूम नहीं कि कल या परसों हमारे पास क्या पैगाम आ जाय। लोगों पर बड़ी जिम्मेदारियाँ हैं और आपको भी कुछ फैसला करना है। इसलिए, इस वक्त आपके आने और हमारे मिलने और दुनिया की बातों पर और खास कर एशिया की बातों पर चर्चा एक खास अहमियत रखती है।

हिन्दुस्तान और चीन दोनों मुल्क पिछले चन्द वर्षों में आजाद हुए और उनको अपनी जिन्दगी बसर करने और अपने रास्ते पर चलने का मौका मिला। हमारे आजाद होने के तरीके मुख्तलिफ थे। आप सब लोग जानते हैं कि हिन्दोस्तान ने जो तरीका अख्तियार किया, वह शान्ति का और अमन का था और राष्ट्रपिता महात्माजी के नेतृत्व में हम उसमें कामयाब हुए। चीन के वाकयात दूसरे थे, वहाँ की हालत दूसरी थी और रास्ता दूसरा था। वे अपने रास्ते पर चले और आजाद हुए, लेकिन दोनों मुल्कों के सामने कई बातें थीं जो कि मिलती-जुलती थीं। अलावा आजादी के, खास बात यह थी कि वह अपने मुल्क के करोड़ों आम लोगों की बेहतरी करें, उनको उठाने की और उनकी हजारों-सैकड़ों वर्षों की मुसीबतें हटाने की बात थी। यही सबक गांधी जी ने हमको सिखाया था और इसी रास्ते पर चीन भी चल रहा है।

आपको मालूम है कि अभी कुछ दिन हुए, चीन और हमारे देश में एक समझौता हुआ - तिब्बत के सिलसिले में। उस समझौते में कुछ उसूलों का जिक्र है कि किस तरह से हम दोनों देश एक दूसरे से मिल कर रहें और हमारा एक दूसरे से क्या रिश्ता हो। उस उसूल को मैं दोहराऊँगा नहीं, लेकिन आपको याद होगा कि वह यह है कि हम एक दूसरे की आजादी को मंजूर करें, एक दूसरे के मामले में दखल न दें, एक दूसरे से सहयोग करें और दोनों में बाहरी या अन्दरूनी कोई दखल न हो। अगर आप गौर करें तो आप देखेंगे कि अगर यही उसूल दुनिया के सब मुल्क मान लें और एक दूसरे के काम में बेजा दखल न दें, यानी एक दूसरे से सहयोग करें तो दुनिया की

मुसीबतें काफी कम हो जायँगी और आजकल जो लड़ाई का डर है, वह भी चला जायगा। आप जानते हैं कि आजकल लड़ाई का डर खास कर एशिया के एक कोने से सम्बन्ध रखता है, यानी इण्डो-चायना से, और इसका सवाल जनेवा के एक सम्मेलन में अभी कुछ दिनों से रहा है। यह भी शायद आप जानते होंगे कि हालांकि वह सवाल हल नहीं हुआ है, लेकिन फिर भी एक काफी बड़ा कदम उठा है उसके हल होने की तरफ जिससे कि हमें कुछ उम्मीद होती है कि जरूर वहाँ की लड़ाई रुकेगी और उसके बाद उससे और भी कई फायदे होंगे। जनेवा में इस दर्जे तक जो कामयाबी हुई है, उसके लिए आपको और आपके साथ वहाँ और मुल्कों के जो बुजुर्ग मौजूद थे, उनको इस कोशिश के लिए कि कोई रास्ता मिले, मुबारकबाद दिया चाहता हूँ और इस उम्मीद के साथ दिया चाहता हूँ कि यह जो कदम उठा है, वह बहुत जल्दी पक्का हो जायगा और इण्डो-चायना की लड़ाई रुक जायगी ताकि वहाँ के जो और मसले हैं वे इत्मीनान से और शान्ति से हल हों।

सारी दुनिया अमन चाहती है और असल में अमन व शान्ति या लड़ाई कोई ऐसी चीज नहीं है कि आजकल आप उसके टुकड़े कर दें। सारी दुनिया शान्ति चाहती है, लेकिन शायद यह कहना सही हो कि एशिया के मुल्कों के लिए यह और भी जरूरी है, इन्तिहा दर्जे जरूरी है, क्योंकि नये-नये मुल्कों के लिए अपने मुल्कों को सम्भालने का, माली तरक्की करने का और मुल्क को बनाने का अगर यह मौका लड़ाई की वजह से हाथ से छिन जाय तो यह हमारे लिए एक बहुत बुरी बात होगी, खतरनाक बात होगी और रञ्जीदा बात होगी। हम जो हिन्दोस्तान के रहने वाले हैं, अपनी आजादी की लड़ाई लड़ी तो शान्ति का तरीका अख्तियार किया। तब आप समझ सकते हैं कि दुनिया की लड़ाई की निस्बत हमारी क्या राय है। चुनांचे हमें खुशी है कि इस वक्त आप और दूसरे आजाद मुल्कों के बड़े-बड़े नुमाइन्दे जनेवा में जमा हुए और वहाँ इस बात की पूरी कोशिश की। सवाल पेचीदा है। लेकिन फिर भी उन्होंने कोशिश जारी रखी और वह कोशिश एक दर्जे तक कामयाब भी हुई है। तो मैं आपसे, इत्मीनान से, सब हिन्दुस्तान के लोगों की तरफ से कह सकता हूँ कि हमारी यह ख्वाहिश है, यह आरजू है, कि यह काम सफलता

चीन और नेहरू—



प० नेहरू और इन्दिरा गाँधी श्री चाओ-अन-लाई के साथ
पेकिंग के पुराने राजप्रसाद में

से पूरा हो, वहाँ की लड़ाई रुके और मुल्क आजाद हों और उनको अपनी जिन्दगी बसर करने का, जिस तरह से वे चाहते हों उसी तरह से बसर करने का मौका मिले। जिन उसूलों पर हमने और चीन ने समझौता किया है, वे उसूल और मुल्कों में लागू किये जायँ ताकि उनको आजादी से और अमन से रहने का मौका मिले और कोई एक दूसरे पर हमलावर न हो। तो, इस वक्त हम यहाँ मिले हैं—आपका जो कि चीन के प्रधान मन्त्री हैं, आदर करने और इज्जत करने। आपका मुल्क हमारा पड़ोसी मुल्क है, एशिया का बुजुर्ग मुल्क है, पुराना मुल्क है और इस वक्त दुनिया के मैदान में और एशिया के मैदान में आप एक बड़ा काम कर रहे हैं और बड़ी जिम्मेदारी ओढ़ रहे हैं। चूंकि आप वहाँ के प्रधान मन्त्री हैं इसलिए खास तौर से आपकी बड़ी जिम्मेदारियाँ हैं और हमें आपसे मिलने और बातें करने का मौका मिला और हिन्दोस्तान और चीन के रिश्ते को और भी मजबूत करने का मौका मिला, क्योंकि जैसा मैंने आपसे कहा, इस रिश्ते पर बहुत कुछ एशिया का और किसी कदर दुनिया का भी दारोमदार है।

इसके पहले कि मैं अंगरेजी भाषा में कुछ कहूँ, आपसे दरख्वास्त करूँगा कि आप हमारी मेहमानी का जामे सेहत पियें।

प्रेस कान्फरेन्स में प्रधान मंत्री चाओ एन-लाई के उत्तर

प्रधान मंत्री चाओ एन-लाई ने २७ जून, १९५४ को नई दिल्ली में एक प्रेस कान्फरेन्स में संवाददाताओं के प्रश्नों का निम्नलिखित उत्तर दिया था—

१—कुछ संवाददाताओं ने पूछा है कि क्या मेरे पास अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को कम करने के लिए कोई ठोस सुझाव है।

मेरे विचार में अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को कम करने का मुख्य उपाय युद्ध का विरोध करना और शान्ति की रक्षा करना है। कोरियाई विराम-सन्धि से अन्तर्राष्ट्रीय तनाव कुछ कम हुआ है। यदि हिन्दचीन की लड़ाई बन्द कर दी जाय और वहाँ फिर से शांति स्थापित कर दी जाय तो अन्तर्राष्ट्रीय तनाव और भी कम हो जायगा। फिर भी, हमें इस तथ्य की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि अभी तक ऐसे लोग मौजूद हैं जो हिन्दचीन के दोनों युद्धरत पक्षों की सम्मानजनक

विराम-संधि में बाधा डाल रहे हैं। इसलिए, शान्ति से प्रेम करने वाले राष्ट्र और लोगों को अपने प्रयत्न जारी रखने चाहिए और इस प्रकार की बाधाजनक कार्रवाइयों को सफल नहीं होने देना चाहिए।

२—कुछ अन्य संवाददाताओं ने पूछा है कि क्या मेरे पास एशियाई राष्ट्रों के आपसी सहयोग को बढ़ाने के लिए कोई ठोस सुझाव है।

मेरे विचार में प्रधान मन्त्री नेहरू का यह कथन बिल्कुल ठीक है कि इस साल अप्रैल में चीन और भारत का, चीनी तिब्बत प्रदेश और भारत के पारस्परिक व्यापार और आवागमन के सम्बन्ध में, जो समझौता हुआ है, उसकी प्रस्तावना के पांच सिद्धान्तों को अपनाया जाना चाहिए। ये सिद्धान्त हैं: एक दूसरे की प्रादेशिक अखण्डता और प्रभुसत्ता का सम्मान करना, एक दूसरे के विरुद्ध आक्रामक कार्रवाई न करना, एक दूसरे के अन्दरूनी मामलों में हस्तक्षेप न करना, समानता और परस्पर-लाभ की नीति का और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति का पालन करना। ये सिद्धान्त केवल हमारे दोनों देशों के लिए ही नहीं, बल्कि एशिया के अन्य देशों और संसार के तमाम देशों के लिए भी अच्छे हैं। यदि इन सिद्धान्तों को एशिया में विस्तृत रूप से लागू किया जाय तो युद्ध का खतरा कम हो जायगा और एशियाई राष्ट्रों के आपसी सहयोग की सम्भावना बढ़ जायगी।

३—कुछ लोगों ने पूछा है: संसार में कुछ राष्ट्र बड़े और कुछ छोटे हैं, कुछ शक्तिशाली और कुछ निर्बल हैं, फिर वे सब शान्तिपूर्वक साथ साथ कैसे रह सकते हैं।

हमारी राय यह है कि अभी अभी दूसरे प्रश्न के उत्तर में मैंने जिन पांच सिद्धान्तों का उल्लेख किया है, उनके आधार पर संसार के सभी राष्ट्र, चाहे वे बड़े हों या छोटे, शक्तिशाली हों या निर्बल और चाहे उनमें से प्रत्येक की सामाजिक व्यवस्था किसी भी प्रकार की क्यों न हो—शान्तिपूर्वक साथ-साथ रह सकते हैं। प्रत्येक राष्ट्र की जनता की राष्ट्रीय स्वाधीनता और आत्म-निर्णय के अधिकारों का सम्मान किया जाना चाहिए। प्रत्येक राष्ट्र के लोगों को यह अधिकार होना चाहिए कि वे अपने लिए, दूसरे देशों के हस्तक्षेप बिना, जैसी भी राज्य-व्यवस्था और जीवन-प्रणाली चाहें, चुन सकें। क्रान्ति विदेशों से नहीं

मंगायी जा सकती। साथ ही, किसी देश के लोगों की, सम्मिलित रूप से व्यक्त की गयी इच्छा में बाहरी हस्तक्षेप भी नहीं होने देना चाहिए। यदि संसार के सभी राष्ट्र अपने आपसी सम्बन्धों आधार इन सिद्धान्तों को बना लें तो एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को न तो धमकी देगा और न उसके विरुद्ध आक्रामक कार्यवाई करेगा और विश्व के सभी राष्ट्रों का शान्तिपूर्वक साथ साथ रहना, संभावना नहीं बल्कि एक वास्तविकता बन जायगी।

४—यह पूछा गया है कि क्या यह उचित होगा कि एशिया के प्रमुख देशों के प्रधान मंत्री एशिया की शान्ति और सुरक्षा को बनाये रखने के सामान्य उपाय ढूँढ़ने के लिए, समय समय पर आपस में मिलते रहें।

मेरी राय में, एशिया की शान्ति और सुरक्षा को बनाये रखने के सामान्य उपाय ढूंढ़ने के लिए, यह उचित होगा कि प्रमुख एशियाई देशों के उचित जिम्मेदार लोग समय-समय पर आपस में मिलते रहें और एक दूसरे से परामर्श करते रहें।

५—बहुत से संवाददाताओं ने प्रश्न किया है कि चीन और भारत के सम्बन्ध किस तरह मजबूत किये जा सकते हैं।

मेरे विचार में चीन और भारत के सम्बन्धों को मजबूत करने और बढ़ाने के लिए हमें विभिन्न दिशाओं में प्रयत्न करना होगा। चीन और भारत में दो हज़ार वर्षों से परम्परागत मित्रता चली आ रही है। हाल ही में हमारे दोनों देशों में, चीनी तिब्बत प्रदेश और भारत के पारस्परिक व्यापार और आवागमन के सम्बन्ध में, एक समझौता हुआ है जो इन सिद्धान्तों पर आधारित है, एक दूसरे की प्रादेशिक अखण्डता और प्रभुसत्ता का सम्मान करना, एक दूसरे के विरुद्ध आक्रामक कार्यवाई न करना, एक दूसरे के अन्दरूनी मामलों में हस्तक्षेप न करना, समानता और परस्पर-लाभ की नीति का और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति का पालन करना। इससे हमारे दोनों देशों के सम्बन्धों को मजबूत करने और बढ़ाने के लिए एक नया आधार मिल गया है। इस नये आधार पर हमारे दोनों देशों की सरकारों और लोगों के बीच, विश्व-शान्ति के लिए, घनिष्ठ सहयोग और स्थिर

सम्पर्क स्थापित होने से और दोनों देशों के आर्थिक सम्बन्धों के विकास और सांस्कृतिक आदान-प्रदान से, दोनों देशों के सम्बन्धों को बराबर मजबूत किया जा सकेगा। यह कहा गया है कि दोनों देशों में इस समय अपेक्षाकृत कम व्यापार हो रहा है। मेरे विचार में एक दूसरे की आवश्यकताओं को पूरा करने और एक दूसरे की सहायता करने की भावना से तथा समानता और परस्पर लाभ के आधार पर, ऐसे उपाय खोजे जा सकते हैं जिनसे यह व्यापार बढ़ सके।

६—प्रधान मंत्री नेहरू और मुझमें पिछले दिनों जो बातचीत हुई है, बहुत से संवाददाताओं ने उसमें दिलचस्पी जाहिर की है। मैं आपको यह सूचित करना चाहता हूँ कि हम—प्रधान मन्त्री नेहरू और मैं—अपनी इस बात-चीत पर संयुक्त वक्तव्य जारी करेंगे। मेरा विश्वास है कि हमारी पिछले कुछ दिनों की यह बातचीत, एशिया और संसार में शान्ति के पक्ष को आगे बढ़ाने में और सहायक होगी।

चाओ एन लाई का भाषण

प्रधान मंत्री चाओ एन-लाई ने, २७ जून १९५४ को दिल्ली नागरिक स्वागत-समारोह में निम्नलिखित भाषण दिया था।

दिल्ली नगरपालिका के प्रधान जी और प्रिय नागरिको।

सबसे पहले मैं आप लोगों के प्रति अपने इस स्वागत-सत्कार के लिए हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

एक महान् देश की राजधानी में कुछ दिन बिताने का मुझे जो अवसर है, उससे मैं अत्यन्त गौरव और आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ। यद्यपि हम दिल्ली में बहुत ही थोड़ी देर रह पाये हैं, तथापि इस महान् परम्पराओं वाले नगर ने और यहाँ की उत्साही जनता ने मुझ पर अविस्मरणीय प्रभाव छोड़े हैं।

हम यहाँ भारतीय जनता के लिए चीनी जनता की मित्रता लेकर आये हैं और हम यहाँ भारतीय जनता में भी चीनी जनता के लिए वैसी ही गहरी मित्रता की भावना को, देख रहे हैं।

हम यहाँ के चीन के लोगों की, शान्ति को बचाने की प्रबल इच्छा लेकर आये हैं और हम यहाँ भारत के लोगों में भी शान्ति को बचाने की उतनी ही प्रबल इच्छा का अनुभव कर रहे हैं।

दिल्ली के लोगो और उनके नेताओं में हमने, भारत-चीन मैत्री को बढ़ाने और विश्व-शान्ति की रक्षा करने की, समूचे भारत के लोगों की सामान्य भावना और आकांक्षा का अनुभव किया है।

दोनों देशों के लोगों की, युगों की पुरानी स्फूर्तिदायक मित्रता का हम सब ने बड़े उत्साह से उल्लेख किया है। आज, जब हम यहाँ एक जगह उपस्थित हैं, हम यह बात सन्तोष के साथ कह सकते हैं कि हमारी यह परम्परागत मित्रता रोज बढ़ रही है।

हम सब ने कहा है कि हमारे दोनों देशों के लोग स्थायी शान्ति की सामान्य इच्छा रखते हैं। निस्सन्देह, भारत और चीन के ९६ करोड़ लोग जब यह माँग कर रहे हैं कि हमें संगठित होना चाहिये और कंधे से कंधा मिला कर काम करना चाहिये तो शान्ति की सुरक्षा के लिए एक विराट् शक्ति का निर्माण हो रहा है।

इस सब से मुझे यह विश्वास हो गया है कि भारत की हमारी इस यात्रा के, निस्सन्देह, मूल्यवान परिणाम निकलेंगे।

आपने कामना की है कि जनेवा सम्मेलन में हमें सफलता मिले। मुझे विश्वास है कि शान्ति के लिए चीन और भारत की—एशिया के दो प्रमुख राष्ट्रों की—एकता के और मजबूत होने से, जनेवा सम्मेलन की सफलता की सम्भावनाएँ निस्सन्देह बढ़ जायंगी।

कल हमें आपके इस प्राचीन और सुन्दर नगर से विदा लेनी है। आज विदाई से पहले मेरी कामना है कि दिल्ली नगरपालिका और उनकी जनता दिन-प्रति-दिन समृद्ध हो। साथ ही, मेरी प्रार्थना है कि आप समूचे भारत के लोगों को चीन के लोगों का अभिनन्दन और मेरा धन्यवाद पहुँचा दें।

चीन और भारत के लोगों की मित्रता चिरंजीवी हो!

एशिया की शान्ति चिरंजीवी हो!

विश्व शान्ति चिरंजीवी हो!

चाओ एन-लाई का रेडियो भाषण

प्रधान मन्त्री चाओ-एन-लाई ने, २७ जून १९५४ को, भारतीय जनता के लिए रेडियो पर एक भाषण किया था जो इस प्रकार है—

प्रिय भारतीय मित्रों !

भारत के लोगों के लिए संदेश देने का मुझे जो अवसर मिला है, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता अनुभव हो रही है। सबसे पहले मैं भारत की महान् जनता का, चीन की महान् जनता की ओर से अभिनन्दन करता हूँ।

चीन और भारत की जनता में बहुत ही प्राचीन काल से गहरी मित्रता रही है। लगभग तीन हजार किलोमीटर लम्बी एक सीमान्त रेखा इन दो राष्ट्रों को एक दूसरे से जोड़ रही है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि हमारे दोनों देशों के बीच शताब्दियों तक सांस्कृतिक और आर्थिक आदान-प्रदान होते रहे हैं, लेकिन कभी भी लड़ाई या शत्रुता नहीं हुई है।

निकट अतीत में, चीन और भारत दोनों को विदेशी उपनिवेशवाद के आक्रमण और दमन का शिकार होना पड़ा था। लेकिन चीनी जनता और भारतीय जनता अपनी स्वाधीनता और स्वतन्त्रता के लिए अविराम संघर्ष करती रही। एक-सी विपत्ति का शिकार होने और एक से उद्देश्य के लिए संघर्ष करने के कारण, चीन और भारत के लोग एक दूसरे से गहरी सहानुभूति रखने लगे और एक दूसरे को गहराई से समझने लगे।

चीनी लोक गणतन्त्र और भारतीय गणराज्य की स्थापना के बाद चीनी और भारतीय जनता की इस इतिहास-पोषित परम्परागत मित्रता का नवीन विकास हुआ है।

हमने अपने निजी राज्यों की स्थापना की है। हमारी सामान्य इच्छा है कि हम, शान्तिपूर्ण वातावरण में, अपनी अपनी महान् मातृभूमि का निर्माण करें। इस सामान्य इच्छा के आधार पर, दोनों देशों के लोगों की मित्रता और भी उन्नति करेगी।

हम इस मित्रता को बहुत ही महत्त्वपूर्ण समझते हैं—क्योंकि मित्रता शक्ति प्रदान करती है। आज, जब कि एशिया की शान्ति को बाहर से खतरा है,

चीन और भारत के ९६ करोड़ लोगों की मित्रता, एशिया और संसार की शांति की सुरक्षा के लिए एक महान् शक्ति बन जाती है।

हाल में, हमारे दोनों देशों में, चीनी तिब्बत प्रदेश और भारत के पारस्परिक व्यापार और आवागमन के सम्बन्ध में, एक समझौता हुआ है। इस समझौते में दोनों की सरकारों ने यह घोषणा की है कि उनके आपसी सम्बन्धों का आधार ये सिद्धान्त होंगे : एक दूसरे की प्रादेशिक अखण्डता और प्रभुसत्ता का सम्मान एक दूसरे के विरुद्ध आक्रामक की कारवाई न करना, एक दूसरे के अन्दरूनी मामलों में हस्तक्षेप न करना; समानता और परस्पर-लाभ और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति का पालन करना। इन सिद्धान्तों के आधार पर सम्पन्न हुआ यह समझौता, इस बात का एक अच्छा उदाहरण है कि राष्ट्रों की आपसी समस्याएँ बातचीत द्वारा हल हो सकती हैं। प्रधान मंत्री नेहरू ने कल कहा था—"यदि ये सिद्धान्त विस्तृत क्षेत्रों में स्वीकार कर लिये जाते हैं तो इससे युद्ध का भय दूर हो जायगा और राष्ट्रों के बीच सहयोग की भावना विकसित होने लगेगी।" प्रधान मन्त्री नेहरू से मेरी अब जो बातचीत हुई है, उसमें हम दोनों की यह राय रही है कि उपरोक्त सिद्धान्त एशिया और संसार के वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में लागू किये जाने चाहिये।

मुझे दृढ़ विश्वास है कि चीन और भारत का सम्मिलित प्रयास एशिया और संसार की शान्ति में निश्चित रूप से महान योग देगा।

चीन और भारत के लोगों की मित्रता चिरंजीवी हो!

एशिया की शान्ति चिरंजीवी हो!

विश्व शान्ति चिरंजीवी हो!

चाओ एन लाई का वक्तव्य

प्रधान मंत्री चाओ एन-लाई ने, २८ जून १९५४ को, दिल्ली से विदा होते समय निम्नलिखित वक्तव्य दिया था—

भारत की अपनी इस यात्रा में मुझे भारतीय सरकार और जनता का उत्साहपूर्ण स्वागत और हार्दिक आतिथ्य-सत्कार प्राप्त हुआ है। अब बिदाई की वेला

में मैं भारतीय सरकार और जनता के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूँ।

पिछले तीन दिनों में चीन और भारत की जो बातचीत हुई है, उसमें वातावरण एक दूसरे से सहयोग करने और एक दूसरे को समझने का रहा है और इसलिये, उसमें निश्चित सफलताएँ प्राप्त हुई हैं। मुझे विश्वास है कि इस तरह की सफलताएँ केवल चीन और भारत की मित्रता को ही मजबूत नहीं करेंगी बल्कि एशिया और संसार की शान्ति को पुष्ट करने में भी सहायक होगी।

अन्त में, मैं इस बात का विशेष रूप से उल्लेख करना चाहता हूँ कि प्रधान मंत्री नेहरू ने चीन-भारत बातचीत में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। हम सब को उनके शान्ति प्रयत्नों की प्रशंसा करनी चाहिए।

भारत के प्रधान मंत्री नेहरू का पीकिंग में आगमन

भारतीय गणराज्य के प्रधान मन्त्री श्री जवाहर लाल नेहरू, चीनी लोक गणतंत्र की सरकार के निमन्त्रण पर, १९ अक्तूबर को मध्याह्न १२:२० बजे चीन की यात्रा के लिए हवाई जहाज द्वारा पीकिंग पहुँचे।

चीनी विदेश मंत्रालय के प्रधान कार्यालय के डायरेक्टर वाङ पिङ-नान, भारत में चीन के राजदूत युआन चुङ-श्येन और चीन में भारत के राजदूत नेद्यम राघवन उनके साथ थे।

भारतीय प्रधान मन्त्री की चीन की इस यात्रा में उनके साथ उनकी पुत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी, भारतीय परराष्ट्र मंत्रालय के प्रधान सचिव एन. आर. पिल्ले और उपसचिव बहादुर सिंह तथा मनोहर लाल गैंद, के. एफ. रुस्तम जी, एन० के० सेशन और तीन अन्य व्यक्ति भी हैं।

भारतीय प्रधान मन्त्री के स्वागत के लिए हवाई अड्डे पर राज्य परिषद् के प्रधान मन्त्री चाउ एन-लाई; राष्ट्रीय लोक कांग्रेस की स्थायी समिति के उपाध्यक्ष सुङ छिङ-लिङ; राज्य परिषद् के उप प्रधान मन्त्री: चेन युन, पेङ-ह्वाइ, तेङ; त्सु हि, हो लुङ उलानफु, लि फु-चुन और लि श्येन-न्येन, चीनी लोक राजनीतिक सलाहकार सम्मेलन की राष्ट्रीय समिति के उपाध्यक्ष को

मो-जो; चीनी कम्युनिष्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के प्रधान सचिव तेङ श्याओ-पिङ; क्वोमिन्ताङ क्रान्तिकारी समिति के अध्यक्ष लि चि-शेन; चीनी जनवादी लीग के उपाध्यक्ष चाङ पो-पुन; चीनी जनवादी राष्ट्रीय निर्माण संघ के अध्यक्ष हाङ येन-पे; अखिल चीनी उद्योग वाणिज्य संघ के अध्यक्ष चेन शु-तुङ; प्रवासी चीनियों के प्रख्यात नेता तान काह-की; पीकिङ के मेयर पेङ चेन; पीकिङ टेंटशिन रक्षासेना के सेनापति न्येह जुङ्-चेन उपविदेश मन्त्री चाङ हान-फु और उनकी धर्मपत्नी, राज्य के प्रमुख अधिकारी तथा विभिन्न जनवादी पार्टियों, दलों और लोक संगठनों के प्रतिनिधि उपस्थित थे।

उनके स्वागत के लिए हवाई अड्डे पर राजधानी के १० हजार से अधिक नागरिक भी उपस्थित थे जिनमें जीवन के सभी क्षेत्रों के लोग शामिल थे।

हवाई अड्डा भारत और चीन के राष्ट्रीय झंडों से सजाया गया था।

हवाई जहाज से उतरते ही प्रधान मंत्री नेहरू ने चीन के प्रधान मंत्री चाओ एन-लाई और अन्य स्वागतकर्ताओं से बड़े जोश से हाथ मिलाया। उधर बैंड पर भारत और चीन के राष्ट्रीय गान बजने लगे। इसके बाद प्रधान मंत्री नेहरू ने गार्ड ऑफ ऑनर का निरीक्षण किया और पीकिंग के बालकों से गुलदस्ते ग्रहण किये।

प्रधान मंत्री नेहरू ने हवाई अड्डे पर भाषण किया। भाषण के बाद प्रधान मंत्री नेहरू उन लोगों के निकट गये जो उनके स्वागत के लिए एकत्र थे और उनकी ओर अभिवादन में अपना हाथ हिलाया। लोगों ने बड़े जोर से तालियां बजायी। और बार बार ये नारे लगाये: "प्रधान मन्त्री नेहरू, हम आपका स्वागत करते हैं" "चीन-भारत मैत्री जिन्दाबाद," "एशिया की शांति जिन्दाबाद," "विश्व शांति जिन्दाबाद।" नेहरू जी को गुलदस्ते भेंट किये गये।

प्रधान मन्त्री चाओ एन-लाई के साथ खुली गाड़ी में जब वह हवाई अड्डे से स्वागत-गृह को चले तो नगर की बाहरी बस्तियों और सड़कों पर, मार्ग के दोनों ओर पंक्तियों में खड़े, दो लाख से भी अधिक लोगों ने नारे लगा कर और तालियाँ बजा कर उनका स्वागत किया।

माओ त्जे-तुंग द्वारा नेहरू जी का स्वागत

चीनी लोक गणतंत्र के अध्यक्ष माओ त्जे-तुङ्ग ने १६ अक्तूबर को अपराह्न ४:१० बजे भारत के प्रधान मन्त्री पं० जवाहर लाल नेहरू का, स्वागत किया था।

इस स्वागत-समारोह में चीनी लोक गणतंत्र के उपाध्यक्ष चू तेह, राष्ट्रीय लोक कांग्रेस की स्थायी समिति के अध्यक्ष ल्यु शाओ-चि, राज्य परिषद् के प्रधान मंत्री चाओ एन-लाई, राष्ट्रीय लोक कांग्रेस की स्थायी समिति के उपाध्यक्ष सूङ छिङ-लिङ और राज्य परिषद् के उपप्रधान मन्त्री चेन युन भी उपस्थित थे।

चीन में भारत के राजदूत नेद्यम राघवन और भारत में चीन के राजदूत युआन चुङ श्येन भी वहाँ उपस्थित थे।

चाउ एन-लाई की ओर से नेहरू के सम्मान में भोज

२० अक्तूबर को सायंकाल राज्य परिषद् के प्रधान मन्त्री चाओ एन लाई ने भारतीय गणराज्य के प्रधान मंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू के सम्मान में, एक शानदार भोज का आयोजन किया था।

७०० से ऊपर व्यक्ति वहाँ उपस्थित थे।

प्रधान मन्त्री चाओ एन-लाई ने इस भोज में भाषण किया था और फिर भारतीय गणराज्य के राष्ट्रपति श्री प्रसाद की सेहत का जाम पेश किया था। उस समय बैण्ड पर भारत का राष्ट्रीय गान बजाया गया था।

उनके बाद प्रधान मन्त्री नेहरू ने भाषण किया था और चीनी लोक गणतंत्र के अध्यक्ष श्री माओ त्जे-तुङ्ग की सेहत का जाम पेश किया था। उस समय बैण्ड पर चीन का राष्ट्रीय गान बजाया गया था।

उपर्युक्त भोज में नेहरू जी का भाषण—

२० अक्तूबर के भोज में नेहरू जी ने जो भाषण किया था, वह इस प्रकार है—

जब मैं दिल्ली से पीकिङ्ग आ रहा था तो पिछले और हाल के इतिहास की एक पूरी दृश्यावली मेरे सामने घूम गयी थी। चीन और भारत ने दो हजार से भी अधिक वर्ष पहले एक दूसरे को जानना और समझना शुरू किया था। उसके बाद बहुत से धार्मिक तथा अन्य यात्री एक देश से दूसरे देश पहुँचे जो अपने साथ सद्भावना के सन्देश लाये और जिनके द्वारा संस्कृति और विचारों के आदान-प्रदान का ही उल्लेख मिलता है, संघर्ष का नहीं मिलता। यह इन दो महान् पड़ोसी देशों की एक गौरवपूर्ण विरासत है।

फिर एक ऐसा समय आया जब दोनों देश बाहरी शक्तियों के कारण एक दूसरे से बिल्कुल अलग-अलग हो गये। स्वाधीनता और स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने के बाद हमने फिर एक दूसरे की ओर देखा और उन पुराने सम्पर्कों को, आज के नये संसार के अनुरूप, फिर से जीवित करने का विचार किया।

श्रीमान् प्रधान मंत्री जी, कुछ महीने पहले जब आप थोड़े समय के लिए भारत पधारे थे तो आपके आगमन का हमने न केवल स्वागत किया था, बल्कि उसका एक ऐतिहासिक महत्त्व माना था। भारत की हमारी जनता ने उसके महत्त्व का अनुभव किया था और आपका उत्साहपूर्ण स्वागत किया था। इसी प्रकार जब उसे पता चला कि मैं इस महान् और प्राचीन देश को आ रहा हूँ तो उसने मेरी यात्रा को बहुत महत्त्व दिया और इसे भारत और चीन दोनों के लिए एक महत्त्वपूर्ण घटना समझा। पीकिंग के लोगों ने कल मेरा जो शानदार स्वागत किया, और जिसके लिए मैं सदैव कृतज्ञ रहूँगा, वह भी इस बात का संकेत है कि इस देश की जनता ने यह समझ लिया है कि यह यात्रा केवल एक व्यक्ति का आगमन नहीं है बल्कि उससे कुछ अधिक है। वह स्वागत मेरा नहीं था बल्कि उस देश का था जिसका प्रतिनिधि होने का गौरव और सौभाग्य मुझे प्राप्त है। जनता की यह चेतना इतिहास का निर्माण करनेवाली शक्तियों और धाराओं की, राजनीतिक नेताओं और राजनीतिज्ञों की इच्छाओं से भी अधिक सच्ची कसौटी है।

अतः, मुझमें कोई गुण चाहे हो या न हो, लेकिन स्थिति यह हो गयी है कि मेरी इस यात्रा ने दो महान् देशों के आपसी सम्बन्ध में कुछ ऐतिहासिक

महत्त्व प्राप्त कर लिया है। भारत और चीन का आपसी सम्बन्ध हर समय बहुत महत्त्व रखेगा। आज के इस भ्रान्त और विषम संसार में तो इसका महत्त्व और भी अधिक हो सकता है आखिर इन्सान किसी भी अन्य चीज से अधिक महत्त्व रखते हैं, और चीन और भारत में बसने वाले लगभग १ अरब इन्सानों का बहुत महत्त्व है।

अपने पिछले इतिहास में हमारे अलग-अलग अनुभव रहे हैं और हम ने अकसर अलग-अलग रास्ते चुने हैं। वर्तमान काल में भी, हो सकता है हम कुछ चीजों पर सहमत न हों। लेकिन इससे इस बुनियादी सचाई को नहीं छिपाया जा सकता कि हमारे बहुत से अनुभव एक-जैसे रहे हैं, हम में बहुत कुछ समानता है और हमारे इन दो देशों और उनके लोगों में निश्चित रूप से परस्पर सद्भावना और मित्रता है। इस कलहपूर्ण संसार में यह बहुत बड़ा लाभ है। आज संसार की सबसे बड़ी आवश्यकता है—शान्ति, और मुझे विश्वास है कि चीन की जनता, भारत की जनता की तरह, शान्ति के ध्येय में संलग्न है।

श्रीमान् प्रधान मंत्री जी! आप जब भारत पधारे थे तो हमने एक संयुक्त वक्तव्य जारी किया था जिसमें हमारे आपसी सम्बन्ध को शासित करने वाले पांच सिद्धान्त सम्मिलित थे। उन सिद्धान्तों में यह महान् नियम प्रतिपादित किया गया था कि प्रत्येक देश स्वतंत्र और स्वाधीन रहे, अपनी इच्छानुसार जीवन व्यतीत करे, दूसरों के साथ मित्रता रखे और कोई देश किसी प्रकार का हस्तक्षेप उसमें न करे। यदि उन सिद्धान्तों पर आज दुनिया में अमल किया जाय तो बहुत से झगड़े, जो राष्ट्रों को कष्ट दे रहे हैं, खत्म हो जायँगे। चीन एक महान् और विशाल देश है जिसमें बहुत प्रकार के लोग बसते हैं। भारत में हम जहाँ अपनी बुनियादी एकता को मजबूत करते हैं, वहाँ साथ ही इस विभिन्नता को भी, जो हमारे राष्ट्रीय जीवन को समृद्ध करती है, मान्यता देते हैं। हम उन लोगों पर, जो किसी एक प्रकार के जीवन के अभ्यस्त हैं किसी दूसरे प्रकार के जीवन को लादना नहीं चाहते। इस प्रकार, हम अपने राष्ट्रीय जीवन के क्षेत्र में भी इस विभिन्नता को मान्यता देते हैं और कायम रखते हैं

क्योंकि हम यह अनुभव करते हैं कि केवल इसी प्रकार राष्ट्र और जनता का पूर्ण विकास हो सकेगा।

यदि एक राष्ट्र में ही स्थिति यह है तो विभिन्न राष्ट्रों में यह चीज कितनी अधिक होगी? एक राष्ट्र की इच्छा को अन्य राष्ट्र पर या एक देश के लोगों की प्रणालियों को दूसरे देश के लोगों पर थोपने का जो प्रयत्न है, वह अवश्य कलह पैदा करेगा और शांति को संकट में डालेगा। यही कारण है कि हम एक देश पर दूसरे देश के शासन का सदा विरोध करते आये हैं।

इस प्रकार, जिस तरह दलों के लिए उसी तरह राष्ट्रों के लिए भी एक-मात्र सही और व्यवहारिक मार्ग यही है कि वे, अपने दृष्टिकोण और जीवन-प्रणाली में भिन्नता रखते हुए भी, परस्पर सह अस्तित्व को मान्यता दें। किसी अन्य मार्ग या इसमें किसी प्रकार के हस्तक्षेप का अर्थ है—कलह।

हम संसार में काफी से अधिक कलह, द्वेष और बरबादी देख चुके हैं। प्रत्येक देश की जनता शांति तथा अपने विकास के लिए बेचैन है। द्वेष और हिंसा से, जो अपने साथ केवल बरबादी नहीं लाते बल्कि मानवता के विकास को भी रोकते हैं, किसी भी व्यक्ति और किसी भी राष्ट्र की वृद्धि नहीं हो सकती।

इसी गम्भीर विश्वास के अनुसार, जिसकी हमारे महान् नेता महात्मा गांधी ने हमें शिक्षा दी है, हमने जितनी भी योग्यता हम में है शान्ति के लिए प्रयत्न किया है। लेकिन युद्ध का अभाव ही शान्ति नहीं है। यह एक ऐसी चीज है जो ठोस है। यह जीवन का एक मार्ग है और चिन्तन और आचरण की एक प्रणाली है। केवल इसी प्रकार हम शान्ति का वास्तविक वातावरण पैदा कर सकते हैं जा हमें राष्ट्रों के आपसी सहयोग की ओर ले जायगा।

मुझे पक्का यकीन है कि चीन और भारत के लोग इस महान् उद्देश्य की पूर्ति में जिसके बिना संसार के लिए कोई आशा नहीं है, अपने आपको लगा देंगे और इसके लिए प्रयत्न करेंगे।

जिस उमंग और प्रेम के साथ इस देश के लोगों ने मेरा स्वागत किया है, मैं उसके लिए पूरी तरह कृतज्ञता प्रकट करने को उचित शब्द नहीं पा रहा हूँ।

यद्यपि मेरी यात्रा अभी आरम्भ हुई है, फिर भी उनके अति उदार स्वागत ने मुझे गद्‌गद् कर दिया। श्रीमान् प्रधान मंत्री जी, मैं चीन के महान नेता चेयरमैन माओ त्से तुंग के प्रति, आपके प्रति और आपकी सरकार के प्रति भी अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूँ।

भारतीय राजदूत की ओर से प्रधान मंत्री नेहरू के सम्मान में आयोजित स्वागत-भोज में चीन सरकार के अध्यक्ष श्री माओ

चीन में भारत के राजदूत श्री नेदम राघवन ने २१ अक्तूबर को सायंकाल भारत के प्रधान मंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू के सम्मान में, जो आजकल चीन की यात्रा कर रहे हैं, एक स्वागत-भोज का आयोजन किया।

इस भोज में ३०० से अधिक लोगों ने भाग लिया।

भारतीय पक्ष की ओर से वहाँ प्रधान मन्त्री नेहरू और उनकी पुत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी, भारतीय परराष्ट्र मंत्रालय के प्रधान सचिव एन. आर. पिल्ले और उपसचिव बहादुर सिंह, एम. एल. गेंद, के. एफ. रुस्तम जी, एन. के. सेशन तथा प्रधान मन्त्री नेहरू के दल के तीन और सदस्य उपस्थित थे।

चीनी पक्ष की ओर से इस भोज में चीनी लोक गणतंत्र के अध्यक्ष माओ त्से तुंग और उपाध्यक्ष चू तेह, राष्ट्रीय लोक कांग्रेस की स्थायी समिति के अध्यक्ष ल्यु शाओ-चि और राज्य परिषद् के प्रधान मन्त्री चाओ एन-लाई उपस्थित थे।

भोज में राष्ट्रीय लोक कांग्रेस की स्थायी समिति के उपाध्यक्ष तथा सदस्य, राज्य परिषद् के उप प्रधान मन्त्री, प्रधान सचिव, मंत्री और कमीशनों के अध्यक्ष, सर्वोच्च लोक न्यायालय के प्रधान तथा चीनी लोक मुक्ति सेना के उच्च अधिकारी भी उपस्थित थे।

चीन-भारत मैत्री संघ तथा अन्य जनवादी संगठनों के प्रमुख सदस्यों ने भी भोज में भाग लिया था।

विभिन्न देशों के राजदूत भी वहाँ उपस्थित थे।

राजदूत राघवन ने इस भोज में पहला जाम पेश करते हुए कहा था—"मैं चीन की महान जनता के प्रिय नेता, भारत के महान मित्र, विश्व शान्ति के

प्रबल समर्थक, महा महिम चेयरमैन माओ त्से तुंग की सेहत का जाम पेश करता हूँ।"

बैंड पर चीनी लोक गणतंत्र का राष्ट्रीय गान बजाया गया था।

फिर चेयरमैन माओ त्से तुंग ने अपनी ओर से जाम पेश करते हुए कहा था —"चीनी और भारतीय जनता दृढ़तापूर्वक शान्ति के पक्ष में है। हमारे इन दोनों देशों के लोग, पूरे संसार के लोगों की तरह, शान्ति के लिये दृढ़संकल्प होकर कार्य कर रहे हैं।"

"आइये, हम चीन और भारत की जनता के सहयोग के लिए और दोनो देशों की जनता की समृद्धि के लिए,

विश्व शान्ति के लिए,

भारतीय गणराज्य के राष्ट्रपति श्री प्रसाद के स्वास्थ्य के लिए,

प्रधान मन्त्री नेहरू की इस यात्रा और उनके स्वास्थ्य के लिए,

आज के इस भोज के मेजबान राजदूत राघवन के स्वास्थ्य के लिए मधु-पान करें।

चीनी जनता के नाम रेडियो पर प्रसारित नेहरू जी का भाषण

२७ अक्तूबर को प्रातःकाल पीकिंग रेडियो पर भारत के प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू का एक भाषण प्रसारित किया गया था जो पहले दिन रिकार्ड किया गया था। यह भाषण इस प्रकार है—

एक सप्ताह पहले मैं पीकिंग पहुँचा था और कल इस प्रसिद्ध और उदार नगर से विदा लेनेवाला हूँ, तीन दिन बाद मैं चीन से वापस भारत के लिए रवाना हो जाऊँगा।

मैं नये चीन के, जिसकी कुछ झांकियाँ लेने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है, अगणित प्रभाव अपने साथ ले जाऊँगा। सबसे अधिक, मैं उस भरपूर मित्रता और सत्कार की स्मृति अपने साथ ले जाऊँगा जो चीन के उदार हृदय लोगों से मुझे मिली है। वह स्मृति मुझे बनी रहेगी और मैं चीनी जनता की कृपा और प्रेम को कभी नहीं भूल सकूँगा।

२० वर्ष पहले चीन में 'सुदीर्घ अभियान' शुरू हुआ था। मुझे याद है कि मैं उसके समाचारों को रोमांच और प्रशंसा की भावना के साथ पढ़ा करता था। वह अभियान सैनिक इतिहास में योग्यता और जबर्दस्त सहनशीलता के एक कारनामे के रूप में स्मरणीय बन गया है। मेरे लिये वह अभियान एक राष्ट्र उसकी जनता के सुदीर्घ अभियान का प्रतीक बन गया था।

चीन और भारत, दोनों ही बहुत वर्षों से अपनी स्वाधीनता और समृद्धि के अभियान में व्यस्त हैं। हम विभिन्न मार्गों पर चलते हुए आज अपनी यात्रा के एक पड़ाव पर आ पहुँचे हैं। यह एक महत्वपूर्ण पड़ाव है जहाँ हम स्वतन्त्र और प्रभुसत्ता-सम्पन्न देशों की तरह कामकर सकते हैं। लेकिन फिर भी वह एक पड़ाव ही है और इससे पहले कि हमारी अगणित जनता सुख और समृद्धि के उस स्तर पर पहुँचे जिस पर कि उसे पहुँचना चाहिये, हमें अभी काफी आगे बढ़ना है।

इस प्रकार हमारे ये दोनों देश इस महान् प्रयत्न में संलग्न हैं और मैं महसूस करता हूँ कि दोनों ही एक दूसरे से कुछ सीख सकते हैं। भले ही उनकी समस्याएँ कुछ हद तक अलग-अलग हों और उनके तरीके भी एक-जैसे न हों, फिर भी ये दोनों अनेक तरह से आपस में सहयोग कर सकते हैं। दो राष्ट्रों और उनके लोगों में जो महत्वपूर्ण चीज है, वह सहिष्णुता और मित्रता की भावना है यदि ये हैं तो चीजें मैत्री होती हैं। मुझे विश्वास है कि चीन और भारत में ये दोनों चीजें मौजूद हैं।

मैं भारत में अपने काम पर, जो काफी भारी है, लौट जाऊँगा। लेकिन, इस महान् चीन देश के अपने स्वल्प प्रवास की और इसकी महान् जनता की मधुर स्मृतियाँ मेरे साथ रहेंगी। ये स्मृतियाँ मुझे साहस और बल प्रदान करेंगी। मुझे हृदय से आशा है कि उन महान् प्रयत्नों में जिनमें हम संलग्न हैं, और संसार में शान्ति की सुदृढ़ स्थापना महानतम् प्रयत्न में हमारे ये दोनों देश परस्पर सहयोग करेंगे और सहायता पहुँचायेंगे।

मैं पीकिंग के लोगों के प्रति और चीन की सरकार और जनता के प्रति उनकी मित्रता और सत्कार के लिए एक बार फिर अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूँ।

नेहरू जी का माओ त्जे-तुङ्ग को धन्यवाद का संदेश

भारतीय गणराज्य के प्रधान मन्त्री जवाहरलाल नेहरू ने ३० अक्तूबर को कैण्टन से भारत के लिए रवाना होने से पहले चीनी लोक गणतन्त्र के अध्यक्ष माओ त्जे-तुङ्ग को धन्यवाद का सन्देश भेजा। संदेश इस प्रकार थाः—

इस संक्षिप्त किन्तु कभी न भुलाई जा सकनेवाली स्मरणीय यात्रा के बाद चीन से बिदा होते हुए मैं एक बार फिर आपके प्रति इस उदार सत्कार और मित्रता के लिए जो मुझे मिला है, धन्यवाद और कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूँ। मैं इसे दो देशों और उनके लोगों की मित्रता का प्रतीक मानता हूँ मुझे आशा है कि ये दोनों देश एक दूसरे के हितों के लिए और विश्व शान्ति के लिए आपस में और भी अधिक सहयोग करेंगे।

नेहरू जी का चीन के प्रधान मन्त्री चाउ एन-लाई को धन्यवाद का सन्देश

भारतीय गणराज्य के प्रधान मन्त्री जवाहर लाल नेहरू ने ३० अक्तूबर को कैण्टन से भारत के लिये रवाना होने से पहले चीनी लोक गणतन्त्र की राज्य परिषद् के प्रधान मन्त्री चाओ एन-लाई को धन्यवाद का एक सन्देश भेजा। सन्देश इस प्रकार रहाः—

इस महान् देश की हमारी यह संक्षिप्त यात्रा समाप्त हो गयी है और हम यहाँ से अब घर के लिए विदा हो रहे हैं। मुझे यहाँ आकर, जो महान् कार्य यहाँ चल रहा है, उसकी कुछ झलक देखकर, तथा चीन की जनता के नेताओं से मिलने का अवसर प्राप्त कर बड़ी प्रसन्नता हुई है। मैंने एक महान राष्ट्र को, जो न केवल विस्तार में बल्कि गुणों और भावना में भी महान् है, देखा है। मैं इस मित्रता और आदर-सत्कार के लिए, जो इस पूरे प्रवास में मेरे चारों ओर उमड़ता रहा है, आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

परिशिष्ट-१

भारत और चीन के तिब्बत प्रदेश के बीच व्यापार और संसर्ग के विषय में भारत गणराज्य और चीन के लोक गणराज्य का इकरारनामा, (२९ अप्रैल, १९५४)।

भारत गणराज्य की सरकार और चीन के लोक गणराज्य की केन्द्रीय लोक सरकार यह चाहती हैं कि भारत और चीन के तिब्बत प्रदेश के बीच व्यापार और सांस्कृतिक संसर्ग बढ़ाया जाय और दोनों देशों की जनता को एक दूसरे के देश में तीर्थ-यात्रा और सफर की सुविधायें हों। इस उद्देश्य से इन्होंने नीचे लिखे सिद्धान्तों के आधार पर इकरारनामा करने का निश्चय किया है--

(क) एक दूसरे की आदेशिक अखण्डता और प्रभुता का आदर करना।

(ख) एक दूसरे पर कभी हमला न करना।

(ग) एक दूसरे के अन्दरूनी मामलों में दखल न देना।

(घ) समता और परस्पर हित की नीति अपनाना।

(च) शान्ति से साथ-साथ रहना।

इस उद्देश्य से उन्होंने अपने-अपने पूर्णाधिकारी नियुक्त किये हैं जो भारत सरकार की तरफ से चीन के लोक गणराज्य में मोतबिर रूप से भेजे हुए भारत सरकार के असाधारण पूर्णाधिकारी राजदूत परम श्रेष्ठ नेडियम राघवन

और चीन के लोक गणराज्य की केन्द्रीय लोक सरकार के विदेश विभाग के उप-मन्त्री परम श्रेष्ठ चांग हान्-फू हैं। इन दोनों ने एक दूसरे के अधिकार पत्रों को भली भांति देख कर और उनको उचित और ठीक रूप में पाकर निम्नलिखित बातें स्वीकार की है।

अनुच्छेद—१

दोनों उच्च पक्षों ने व्यापारी एजेन्सियाँ स्थापित करने का आपस में निश्चय किया है।

१—भारत सरकार इस बात पर राजी है कि चीन सरकार नयी दिल्ली, कलकत्ता और कालिमपोंग में व्यापारी एजेन्सियाँ स्थापित करें।

२—चीन सरकार इस बात पर राजी है कि यातुङ्ग, ग्यांत्से और गर्तोक में भारत सरकार व्यापारी एजेंसियाँ स्थापित करें।

दोनों पक्षों की व्यापारी एजेंसियों को एक जैसा पद और एक जैसा बर्ताव मिलेगा। दोनों पक्षों के व्यापारी एजेंटों को अपने पदकर्तव्य के पालन में गिरफ्तारी से मुक्ति होगी और उनकी स्त्रियों की और उनकी सन्तान की जो उन पर पालन-पोषण के लिये निर्भर हैं, तलाशी से मुक्ति होगी। दोनों पक्षों की व्यापारी एजेंसियों को हरकारों, डाक थैलों और कोड के सन्देश भेजने के बारे में रियायत व छूट होगी।

अनुच्छेद—२

दोनों उच्च पक्ष इस बात पर राजी हैं कि उन परिचित व्यापारियों को जो चीन के तिब्बत प्रदेश और भारत के बीच रीति के अनुसार और निर्दिष्टता से व्यापार करते रहे हैं, निम्नलिखित स्थानों में व्यापार करने की इजाजत होगी:—

१—चीन सरकार निम्नलिखित व्यापार केन्द्र (मार्केट्स फॉर ट्रेड) निर्दिष्ट करती है: (क) यातुङ्ग (ख) ग्यांत्से (ग) फारी। भारत सरकार इस

बात पर राजी है कि रीति के अनुसार भारत में जिसमें कालिमपोंग, सिलीगुरी, कलकत्ता जैसे स्थान शामिल है, व्यापार किया जाय।

२—चीन सरकार निम्नलिखित व्यापार केन्द्र (मार्केट्स फॉर ट्रेड) निर्दिष्ट करती है: (क) गर्तोक (ख) पुलनचुंग (तकलाकोट) (ग) ग्यानिमा खारगो (घ) ग्यानिमा चक्र (च) रामूरा (छ) डोंगब्रा (ज) पुलिंग समदो (झ) नाब्रा (त) शंतगत्सी, और (थ) ताशीगौंग।

भारत सरकार इस बात पर राजी है कि भविष्य में चीन के तिब्बत प्रदेश के आरी जिले और भारत के बीच में होने वाले व्यापार के विकास और आवश्यकता के अनुसार जब चीन तिब्बत प्रदेश के आरी जिले से मिले हुए भारत के जिले में व्यापार के केन्द्र (मार्केट्स फॉर ट्रेड) निर्दिष्ट करने आवश्यक हों तो वे समानता और पारस्परिकता के आधार पर ऐसा करने का विचार करने के लिए तैयार होगी।

अनुच्छेद—३

दोनों उच्च पक्ष इस बात पर राजी हैं कि दोनों देशों के धार्मिक तीर्थयात्री निम्नलिखित शर्तों के अनुसार तीर्थयात्रा कर सकेंगे :—

१—भारत के लामा, हिन्दू और बौद्ध धर्मों के मानने वाले तीर्थयात्री रीति के अनुसार चीन के तिब्बत प्रदेश में कांगरिपोचे (कैलाश) और मवांत्सी (मानसरोवर) में आ जा सकते हैं।

२—चीन के तिब्बत प्रदेश के लामा और बौद्ध धर्मों को मानने वाले तीर्थयात्री भारत में, रीति अनुसार बनारस, सारनाथ, गया और साँची में आ जा सकते हैं।

३—जो तीर्थ यात्री यथारीति ल्हासा जाते रहे हैं, वह अब भी रीतिअनुसार वहाँ आ जा सकते हैं।

अनुच्छेद—४

दोनों देशों के व्यापारी और तीर्थयात्री नीचे लिखे दर्रों और रास्ते से आ जा सकते हैं :—

(क) शिपकी ला दर्रा
(ख) माना दर्रा
(ग) नीति दर्रा
(घ) कुंगरी बिंगरी दर्रा
(च) दरमा दर्रा
(छ) लिपू लेख दर्रा

इसके अलावा रिवाजी रास्ता जो ताशीगांत को शांगांत संगपू (सिन्ध) नदी की घाटी के साथ जाता है, वह रीति अनुसार आयन्दा भी इस्तेमाल किया जाता रहेगा।

अनुच्छेद—५

दोनो उभय पक्ष इस बात पर राजी हैं कि सीमा-पार यात्रा करने के लिए दोनों देशों के कूटनीतिक कार्यकर्ताओं, अधिकारियों और राष्ट्रवासियों को पासपोर्ट रखना आवश्यक होगा। यह पासपोर्ट अपने अपने देशों से जारी होंगे और इनका वीजा दूसरे देश की तरफ से दिया जायेगा। परन्तु नीचे लिखे १,२,३,४ खंड में वर्णित राष्ट्रवासियों के लिये इसका अपवाद भी होगा :—

१—दोनो देशों के उन परिचित व्यापारियों को जो रीतिअनुसार और निर्दिष्टता से चीन के तिब्बत प्रदेश और भारत के बीच व्यापार करते रहे हों, उनकी स्त्रियों और संतान को जो उन पर पालन-पोषण के लिए निर्भर हैं और उनके नौकर-चाकरों को भारत या चीन के तिब्बत प्रदेश में, यथोचित व्यापार के लिए प्रवेश करने की अनुमति यथारीति दी जायेगी जब वह उन प्रमाणपत्रों को पेश कर देंगे जो उनके देशों की स्थानिक सरकार ने या उनके यथानियम अधिकार प्राप्त एजेण्टों ने जारी किये हों और उनका दूसरे देश की सरहदी जाँच चौकी पर निरीक्षण किया जा चुका हो।

२—दोनों देशों के सरहदी जिलों के निवासी जो छोटा-मोटा व्यापार करने के लिये या अपने मित्रों और सम्बन्धियों से मिलने के लिए सीमा पार करते

हैं, दूसरे देश की सीमा के साथ वाले जिलों में रीति अनुसार, जैसे अब तक, आ सकते हैं और उन पर अनुच्छेद ४ में वर्णित दर्रों या रास्ते की पाबन्दी नहीं होगी और उनको पासपोर्ट, वीजा या आज्ञा-पत्र लेने की जरूरत न होगी।

३—दोनों देशों के पोर्टरों व खच्चर चलाने वालों को जो आवश्यक यातायात के काम में सीमा पार करते हैं, अपने देश से जारी किये हुए पासपोर्ट लेने की आवश्यकता न होगी। परन्तु उनको केवल निश्चित समय के लिये मान्य (तीन महीने, आधे साल, या एक साल के लिये) प्रमाणपत्र लेने होंगे जो उनकी स्थानिक सरकार ने या उनके यथानियम अधिकार प्राप्त एजेंटों ने जारी किये हों। इन प्रमाणपत्रों की दूसरे पक्ष की सरहदी जाँच चौकियों में रजिस्ट्री करानी होगी।

४—दोनों देशों के तीर्थ-यात्रियों के लिए प्रमाणीकरण लेख-पत्र लेना आवश्यक नहीं है। परन्तु उनको दूसरे पक्ष की सरहदी जाँच-चौकियों में अपने नाम की रजिस्ट्री करानी पड़ेगी और तीर्थ-यात्रा के लिए उनको आज्ञा-पत्र मिलेगा।

५—इस अनुच्छेद के गत खंडों में लिखी शर्तों के बावजूद दोनों सरकारें अपने-अपने देश में किसी भी व्यक्ति के प्रवेश को रोक सकती हैं।

६—जो व्यक्ति दूसरे पक्ष के इलाके में इस अनुच्छेद के गत खंडों की शर्तों के अनुसार प्रवेश करे वह उस पक्ष की नियत की हुई प्रणालियों पर अमल करने के बाद ही उस पक्ष के इलाके में ठहर सकते हैं।

अनुच्छेद—६

यह इकरारनामा दोनों सरकारों की मंजूरी की तिथि से अमल में आ जायेगा और आठ वर्ष तक चालू रहेगा। दोनों पक्ष इस इकरारनामे का और समय तक बढ़ाने के लिए बातचीत करते हैं यदि कोई एक पक्ष आठ वर्ष पूरे होने के छः महीने पहले ऐसा करने की माँग करे और दूसरा पक्ष इस माँग को स्वीकार कर ले।

इस इकरारनामे के हिन्दी, चीनी और अंग्रेजी में दो दो प्रतिरूप २९ अप्रैल १९५४ को पीकिंग में लिखे गये हैं। इकरारनामा तीनों भाषाओं में एक सा मान्य होगा।

(नेडियम राघवन) — भारत के गण राज्य की सरकार का पूर्णाधिकारी

(चांग हान्-फू) — चीन के लोक गणराज्य की केन्द्रीय लोक सरकार का पूर्णाधिकारी

(भारत सरकार के सूचना विभाग द्वारा प्रचारित अनुवाद)

परिशिष्ट—२

संसद में हिन्द-चीन पर भारत के प्रधान मंत्री नेहरूजी का वक्तव्य (२४ अप्रैल- १९५४)।

शनिवार २४ अप्रैल १९५४ को लोक-सभा में प्रधान मन्त्री ने हिन्दचीन के सम्बन्ध में जो वक्तव्य दिया उसका हिन्दी रूपान्तर नीचे दिया जाता है:—

सदन को मालूम है कि पिछले फरवरी के महीने में कोरिया और हिन्द-चीन की समस्याओं पर विचार करने के लिए फ्रान्स, अमेरिका, रूस और ब्रिटेन अपना और साथ ही गणराज्य चीन का एक मिला जुला सम्मेलन करने को सहमत हुए। इसमें सम्मिलित होने के लिए दूसरे सम्बद्ध देश भी आमंत्रित किये जायँगे। इस सम्मेलन का अधिवेशन अगले सप्ताह जेनेवा में शुरू होगा। न तो हम इस सम्मेलन में और न उस लड़ाई में शामिल हैं जो हिन्द चीन में चल रही है। फिर भी हिन्द चीन की समस्या के प्रति हमारी दिलचस्पी और गहरी चिन्ता भी है और इसको लेकर हाल में जो घटनाएँ हुई हैं उनके सम्बन्ध में हम खास तौर से चिन्तित हैं। हम इस बात की भी फिक्र में हैं कि जेनेवा सम्मेलन बातचीत के द्वारा इस प्रश्न का निपटारा करने का प्रयत्न करे और ऐसा करने में उसे सफलता मिले, ताकि लड़ाई की वह छाया मिट जाय जिसके कारण पड़ोस के क्षेत्रों में बहुत दिनों से अन्धेरा छाया हुआ है और जिसके और भी अधिक फैलने तथा गहरी हो जाने का भय है।

जिस प्रकार का दृष्टिकोण रचनात्मक और लाभदायक सिद्ध हो सकता है उसके लिए इस समस्या की आधारभूत वास्तविकताओं, निहित राष्ट्रीय तथा राजनीतिक भावनाओं और पृष्ठभूमि तथा वहाँ की वर्तमान स्थिति को भली प्रकार समझने की आवश्यकता है।

अपने मूल और वास्तविक रूप में हिन्दचीन की लड़ाई उपनिवेशवाद के विरोध का आन्दोलन है और इस आन्दोलन को दमन और 'फूट डालो' और 'शासन करो' की परम्परागत प्रणाली द्वारा दबाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

विदेशी हस्तक्षेप से यह समस्या और भी जटिल हो गयी है, किन्तु फिर भी, मूलतः वह उपनिवेश-विरोधी और राष्ट्रीय ही है। इस तथ्य को मानते हुए, स्वतंत्रता एवं स्वाधीनता की राष्ट्रीय भावनाओं को ध्यान में रख कर और बाहरी दबावों से उनकी रक्षा करके ही, समझौते व शान्ति की बुनियाद डाली जा सकती है। भारी युद्धास्त्रों के प्रयोग और बड़े पैमाने की लड़ाई के बावजूद, इस संघर्ष का स्वरूप आज भी एक गुरिल्ला-युद्ध सा ही है, जिसमें कोई निश्चित या स्थायी सीमाएँ नहीं हैं। देश प्रतिद्वंद्वी शक्तियों के बीच बँट गया है, लेकिन इलाकों की कोई स्थायी सीमाएँ नहीं हैं। भूमि की बड़ी-बड़ी टुकड़ियाँ और इलाकों व आबादियों के खंड, एक एक दिन में या रात-रात भर में एक पक्ष से दूसरे पक्ष के प्रति अपनी निष्ठा बदलते रहते हैं। लड़ाइयाँ जीती और हारी जाती हैं, स्थान हाथ में आते और निकलते रहते हैं, किन्तु युद्ध वर्ष-प्रति वर्ष अधिकाधिक भयंकरता से चलता जा रहा है। लाखों हिंदचीनी, चाहे वे लड़ाई में शामिल हों या दूसरे लोग हों और वे चाहे जिस पक्ष के हों, मरते घायल होते या अन्य प्रकार से मुसीबत में पड़ते हैं और उनका देश वीरान होता जाता है।

हिन्दचीन में साम्राज्यवाद का विरोध एक बड़े आन्दोलन के रूप में, सन् १९४० में, जापानी अधिकार के खिलाफ शुरू हुआ था। जापान-विरोधी इस युद्ध में अमेरिकन और मित्र देशों की सेनाओं की सहायता वियतमिन्ह (१९४१ में स्थापित) तथा अन्य राष्ट्रीय व दूसरे गुटों ने की थी, जिनके नेता हो-ची मिन्ह थे। उस समय वियतमिन्ह की ओर से जो घोषणा की गयी थी उसमें "अमेरिका, रूस, ब्रिटेन और चीन द्वारा 'लोकतंत्रात्मक सिद्धान्तों की रक्षा' का उल्लेख था और इन बड़े राष्ट्रों से अनुरोध किया गया था कि वे घोषित करें कि जापानियों के पराजित हो जाने के बाद हिन्द चीनी जनता को पूर्ण स्वायत्त शासन प्राप्त होगा।"

द्वितीय महायुद्ध के बाद एक अस्थायी सरकार, जिसके १५ सदस्यों में ५ कम्युनिस्ट थे और जिसे नरम राष्ट्रवादियों, कैथोलिकों और दूसरों का समर्थन प्राप्त था, स्थापित की गयी। हो-ची मिन्ह वियत-नाम के लोकतंत्रात्मक गणराज्य के राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। इस गणराज्य की घोषणा सितम्बर, १९४५ में की गयी और तत्कालीन चीन सरकार ने इसे स्वीकार कर लिया। ६ मार्च, १९४६ को फ्रांस ने, जो युद्ध के बाद हिन्द चीन में वापस आ गया था, हो-ची मिन्ह के साथ एक करार पर हस्ताक्षर किए। इसके द्वारा फ्रांस ने वियत-नाम के लोकतंत्रात्मक गणराज्य को एक स्वतंत्र राज्य के रूप में, जिसकी खुद अपनी सरकार, संसद, सेना तथा वित्त-व्यवस्था है और जो हिन्द चीनी फेडरेशन तथा फ्रेञ्च यूनियन का एक भाग है, स्वीकार कर लिया। किन्तु यह व्यवस्था अधिक दिनों तक नहीं चल सकी। हो-ची मिन्ह के गणराज्य और फ्रेंच साम्राज्य के बीच सन् १९४७ में संघर्ष शुरू हुआ और तब से बराबर जारी है। जून, १९४८ में, फ्रांस ने अनाम के भूतपूर्व सम्राट, बाओदाई के साथ एक करार पर हस्ताक्षर किये और उन्हें वियतनामका अध्यक्ष बना दिया और वियतनाम को फ्रेंच यूनियन के अन्दर एक सम्बद्ध राज्य (असोशियेट स्टेट) के रूप में मान्यता प्रदान की। हिन्द-चीन के दो राज्यों, लाओस और कम्बोडिया के साथ भी फ्रांस ने इसी प्रकार के समझौते किये।

यही वह अवसर है, जब हिन्द चीन की लड़ाई ने अपना वर्तमान अशुभ स्वरूप—जो बड़ी शक्तियों के दो गुटों के संघर्ष का प्रतिबिम्ब है—धारण करना आरम्भ किया। अमेरिका ने फ्रांस को माली और लड़ाई के सामान की जो सहायता दी थी, वह फ्रांसीसियों को हिन्द-चीन के युद्ध के लिए उपलब्ध हुई। दूसरी ओर कहा जाता है कि वियत मिन्ह ने यह कहते हुए कि लड़ाई फ्रांसीसी उपनिवेशवाद के विरुद्ध लड़ी जा रही है, जनगणराज्य चीन से आर्थिक सहायता प्राप्त की। जन गणराज्य चीन ने वियतनाम के लोकतंत्रात्मक गणराज्य (वियतमिन्ह) की वह मान्यता जारी रखी, जो उसे पहले की चीन सरकार ने प्रदान की थी।

हस्तक्षेप पर हस्तक्षेप होते रहे और युद्ध की भयंकरता बढ़ती गयी। सम-

झौते की बातचीत में अधिकाधिक कठिनाइयाँ पड़ती गयीं और वह विफल होती गयीं। हाल को महीनों की घटनायें इसी पृष्ठभूमि के बाद उपस्थित हुई हैं।

इनमें से पहली घटना बर्लिन में एकत्र हुई शक्तियों का यह निर्णय है कि इस समस्या पर जेनेवा में विचार किया जाय। हमने इस सम्मेलन का स्वागत किया और आशा प्रकट की कि इसके फलस्वरूप हिन्द-चीन में शान्ति की स्थापना सम्भव हो सकेगी। हमने समझा कि इस प्रकार बातचीत के द्वारा सुलह व समझौते का रास्ता अपनाया जा रहा है। उसी समय मैंने इस सदन में एक वक्तव्य देकर हिन्द-चीन में लड़ाई बन्द करने करने की अपील की, जिसका स्वागत सदन में सर्वसम्मति से किया गया।

यद्यपि जेनेवा सम्मेलन का निश्चय एक सराहनीय घटना थी, किन्तु शीघ्र ही बाद की घटनाओं ने चिन्ता और भय के भाव उत्पन्न कर दिये। ये घटनाएँ इस प्रकार हैं :—

(१) तुरन्त और बड़े पैमाने पर बदला लेने और चीन के मुख्य भू-खंड पर सम्भाव्य आक्रमण का बार बार उल्लेख और हिन्द-चीन की लड़ाई की परिधि व जोर बढ़ाने के विषय में दिये गये वक्तव्य ;

(२) दक्षिण-पूर्वी एशिया में 'सम्मिलित एवं सामूहिक, कार्रवाई के लिए पश्चिमी देशों, "एनजस" शक्तियों और कई एशियायी राज्यों को निमंत्रण। इसके पहले ऐसे वक्तव्य दिये जा चुके हैं, जो दक्षिण-पूर्व एशियायी देशों पर एक प्रकार का संरक्षण रखने तथा उनके सम्बन्ध में एक तरह के "मुनरो सिद्धान्त" की घोषणा करने के बराबर हैं।

इस प्रकार हिन्द-चीन मामले में प्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप करने, युद्ध को अन्तर्राष्ट्रीय बना देने और उसको परिधि व जोर को बढ़ा देने के तात्कालिक चिन्ह पैदा हो गये।

इस तरह के महत्वपूर्ण सम्मेलन से पहले, जो प्रत्यक्ष ही इस कारण से बुलाया गया कि आपसी बातचीत सम्भव और आवश्यक समझी गयी, ऐसी घोषणा करना जिसमें उसके प्रति आस्था की कमी दिखाई पड़ती है और जिसमें पाबन्दियों की धमकियों से भरे विकल्प रखे गये हैं, भारत सरकार अत्यन्त खेद

की बात समझती है और उससे बहुत चिन्तित है। अगर बातचीत से पहले दबाव, धमकियों, उपेक्षा और अनास्था की घोषणाएँ की जाएँ तो उनसे बातचीत में व्यवधान पड़ता है, वे ठीक तरह से शुरू नहीं हो पाती और उनमें यदि कोई प्रगति होती भी है तो बहुत रुक रुक कर।

एक और जिस बात से हमारा भ्रम बढ़ता है, वह है युद्ध की गति को बढ़ाना और हिन्द-चीन में युद्ध सामग्री की सप्लाई में वृद्धि करना यह बड़ी सप्लाई स्पष्टतः वियत-मिन्ह की सहायता के लिए आयी है, जिससे कहा जाता है, उन्हें बड़े हमले करके ऐसी सैनिक विजय प्राप्त करने में सुविधा मिलती है जिससे आगामी सम्मेलन की बातचीत उनके पक्ष में हो। फ्रांसीसी वियत-नाम पक्ष के लिए अमरीकी सहायता बढ़ा दी गयी है तथा और अधिक सहायता देने के आश्वासन दिये गये हैं।

भारत में हम लोगों के लिए यह अत्यन्त चिन्ताजनक और गम्भीर बात है। इसका परिणाम एशियाई देशों की नव-अर्जित तथा वांछित स्वतन्त्रता पर प्रभाव डालनेवाला है।

एशियाई देशों की सम्पन्नता तथा विश्व-शान्ति के लिए यह आवश्यक है कि एशियाई देशों की स्वतन्त्रता और प्रभुसत्ता कायम रखी जाय और औपनिवेशिक तथा विदेशी शासन का अन्त हो।

एशिया में हम कोई विशेष स्थान नहीं चाहते और न हम किसी संकुचित तथा वर्गाधारित एशियाई प्रदेशवाद के पोषक हैं। हम केवल यही चाहते हैं कि हम तथा अन्य देश, विशेष रूपसे हमारे पड़ोसी, शान्तिपूर्ण क्षेत्र बनाये रहें और दुनिया के खिंचाव और युद्धों से अलग रहने तथा उनमें न फंसने की नीति पर कायम रहें। हमारा विश्वास है, यह स्वयं हमारे ही लिए आवश्यक है और केवल इसी से हम संसार के खिंचाव को कम करने, निरस्त्रीकरण को बढ़ाने और विश्व-शांति स्थापित करने में योगदान दे सकें।

वर्तमान घटनाएँ हमारी आशाओं पर पानी फेरती है; वे हमारी आधार भूत नीतियों को प्रभावित करती हैं और हमें इस या उस गुट में खींचना चाहती हैं।

हमारे लिए शांति एक उत्सुकतापूर्ण आशा मात्र नहीं है; यह एक अत्यन्त आवश्यक चीज है।

हिन्द-चीन एक एशियाई देश है और निकटवर्ती क्षेत्र है। इस युद्ध से बहुत अधिक हानि उठाने पर भी वह हस्तक्षेपों से जकड़ा हुआ है और उसकी स्वतंत्रता संकट में है। अतएव, हिन्द-चीन का यह संकट हमारे लिए घोर चिन्ता का विषय है। इससे यह आवश्यक हो गया है कि हम इस मामले पर अच्छी तरह सोच-विचार करें युद्ध को बढ़ने और भीषण रूप ग्रहण करने से रोकने का प्रयत्न करें और निपटारे की संभावनाएँ बढ़ाएँ।

भारत सरकार को विश्वास है कि दृष्टिकोण में अन्तर, घोर शंकाएँ तथा विरोधी दावे होते हुए भी, जेनेवा में एकत्रित होने वाले महान् राजनीतिज्ञों तथा उनके देशों का उद्देश्य एक ही है और वह है—युद्ध को बढ़ने से रोकना। कुछ कठिनाइयों तथा गतिरोधों को दूर करने में सहायता देने तथा एक शान्तिपूर्ण निपटारा संभव करने की अपनी हार्दिक इच्छा से भारत सरकार ने निम्न सुझाव देने का साहस किया है—

(१) शान्तिपूर्ण तथा परस्पर बातचीत का वातावरण बढ़ाना है और शंका तथा धमकियों के वर्तमान वातावरण को दूर करना है। इस दिशा में भारत सरकार की सब सम्बद्ध देशों से अपील है कि वे धमकियां देना बन्द कर दें। युद्ध में भाग लेने वाले पक्षों से भी यह अपील है कि युद्ध के वेग को न बढ़ाएँ।

(२) युद्ध-विराम। युद्ध-विराम के लिए भारत सरकार के सुझाव ये हैं:

(क) हिन्द-चीन सम्मेलन की कार्य-सूची में 'युद्ध-विराम' विषय को प्राथमिकता दी जाय।

(ख) युद्ध में वास्तविक रूप से भाग लेने वाले पक्षों, अर्थात् फ्रांस तथा उसके तीनों साथी राज्यों और वियत-मिन्ह, का एक युद्ध-विराम समूह बनाया जाय।

(३) स्वतंत्रता—सम्मेलन को यह निश्चय करना चाहिए और यह घोषणा करनी चाहिये कि इस झगड़े को निपटाने के लिए यह आवश्यक है कि फ्रांस की सरकार हिन्द-चीन को पूर्ण स्वतन्त्र करने का वचन दे।

(४) सीधे बातचीत—सम्मेलन द्वारा मुख्य रूप से सम्बद्ध दलों में सीधे बातचीत शुरू करायी जाय। स्वयं कोई समझौता निकालने के बजाय, सम्मेलन को मुख्य रूप से सम्बद्ध दलों से आपस में बातचीत करने की प्रार्थना करनी चाहिए और इसके लिए सम्मेलन सभी प्रकार की सहायता दे। इस प्रकार की सीधी बातचीत से हिन्द चीन की समस्या को उन प्रश्नों तक सीमित रखने में सहायता मिलेगी जिनका हिन्द-चीन से सीधा सम्बन्ध है। ये दल वही होंगे जो युद्ध-स्थगन दल में होंगे।

(५) अहस्तक्षेप—सम्मेलन द्वारा अमरीका, रूस, ब्रिटेन और चीन में यह करार कराया जाय कि ये देश परोक्ष या अपरोक्ष रूप से सेना या युद्ध-सामग्री द्वारा युद्धरत दलों को सहायता न देंगे। संयुक्त राष्ट्रसंघ से यह प्रार्थना की जाय वह हिन्द-चीन में अहस्तक्षेप का एक अभिसमय (कनवेंशन) बनाये जिसमें उपर्युक्त करार और इसको कार्यान्वित करने की व्यवस्था भी शामिल हो। अन्य राष्ट्रों से भी संयुक्त राष्ट्रसंघ इस अभिसमय का पालन करने के लिए कहे।

(६) संयुक्त राष्ट्रसंघ—सम्मेलन की प्रगति की सूचना संयुक्त राष्ट्रसंघ को दी जाय। अभिसमय के उपयुक्त अनुच्छेद के अन्तर्गत समझौते के लिए संयुक्त राष्ट्र का उपयोग किया जाय।

भारत सरकार, ये प्रस्ताव अत्यन्त नम्रता तथा इस इच्छा और आशा से प्रस्तुत करती है कि सम्मेलन और प्रत्येक सम्बद्ध पक्ष इन पर विचार करेगा। वह समझती है कि ये प्रस्ताव व्यवहारिक हैं और इन्हें तत्काल ही कार्यान्वित किया जा सकता है।

इसका विकल्प भीषण है। क्या हम सबके लिए, विशेषकर उनके लिए

जो आज संसार के कर्णधार हैं, परम पवित्र पोप के शब्दों में यह समझने का समय नहीं आ गया है कि "परस्पर भय के महँगे और उत्तेजनापूर्ण सम्बन्ध से शान्ति नहीं बनी रह सकती ?"

(भारत सरकार के पत्र सूचना विभाग द्वारा प्रचारित विवरण)

परिशिष्ट—२

भारत और चीन के प्रधान मन्त्रियों का संयुक्त वक्तव्य (२८ जून, १९५४)।

१—भारत के गणराज्य के प्रधान और परराष्ट्र मन्त्री महामान्य श्री जवाहरलाल के निमन्त्रण पर चीन के लोकराज्य के प्रधान और परराष्ट्र मन्त्री महामान्य चाउ एन-लाई दिल्ली आए। वे यहाँ तीन दिन ठहरे। इस अवधि में दोनों प्रधान मन्त्रियों ने भारत और चीन से सम्बन्धित अनेक विषयों पर विचार-विमर्श किया। विशेषकर उन्होंने दक्षिण-पूर्व एशिया में शान्ति स्थापना की सम्भावनाओं और जनेवा सम्मेलन में हिन्द-चीन सम्बन्ध में जो प्रगति हुई, उस पर बात-चीत की। हिन्द-चीन की स्थिति का एशिया और विश्व की शान्ति के लिए बहुत अधिक महत्त्व है और दोनों प्रधान मन्त्री इस बात के इच्छुक हैं कि जनेवा में जो प्रयत्न हो रहे हैं, वे सफल हों। उन दोनों को इस पर संतोष है कि युद्ध-विराम के विषय में जनेवा में बातचीत में प्रगति हुई है। उनकी हार्दिक कामना है कि निकट भविष्य में ही ये प्रयत्न सफल हों और परिणाम स्वरूप इस क्षेत्र की राजनीतिक समस्याएँ सुलझ जायँ।

२—दोनों प्रधान मन्त्रियों की बातचीत का उद्देश्य है कि जनेवा तथा अन्यत्र शान्ति स्थापना के लिये जो प्रयत्न हो रहे हैं उनको जिस प्रकार हो मदद पहुँचावें। उनका मुख्य उद्देश्य है कि वे एक दूसरे के दृष्टिकोण का

अच्छी तरह समझ लें ताकि आपस में मिल कर तथा अन्य देशों के सहयोग से वे शान्ति की रक्षा में सहायक हो सकें।

३- हाल ही में भारत और चीन में एक समझौता हुआ है जिसमें उन्होंने दोनों देशों के बीच में किस प्रकार के सम्बन्ध रहें इसके लिए कुछ सिद्धांत स्थित किये हैं। ये सिद्धांत निम्नलिखित हैं:—

(१) एक दूसरे की प्रभुता का ख्याल रखना और उनके राज्यों की सीमाओं का अतिक्रमण न करना।

(२) एक दूसरे के प्रति कोई शत्रुतापूर्ण कार्य न करना।

(३) एक दूसरे के अन्दरूनी मामलों में कोई दखल न देना।

(४) एक दूसरे के हितों का ध्यान रखना और बराबरी का भाव रखना, और

(५) शान्ति और सहयोग से मिलकर रहना।

दोनों प्रधान मंत्रियों ने इन सिद्धान्तों की पुष्टि की और निश्चय किया कि 'एशिया के और संसार के अन्य देशों से सम्बन्ध रखने में भी इन्हीं सिद्धान्तों को लागू किया जाय यदि यह सिद्धांत विभिन्न देशों के आपसी व्यवहार में ही नहीं वरन् साधारण रूप में अन्तर-राष्ट्रीय सम्बन्धों में भी लागू किये जायँ तो ये शान्ति और सुरक्षा के लिए ठोस आधार बन सकेंगे और आज जो भय और आशंकाएँ फैली हुई हैं, वे भी दूर हो जायेंगी और सब में भरोसा पैदा हो सकेगा।

४—प्रधान मन्त्रियों ने इस बात को स्वीकार किया कि एशिया तथा संसार के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न प्रकार की सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्थाएँ विद्यमान हैं। परन्तु यदि उपर्युक्त सिद्धान्त स्वीकार किये जायँ और उन पर आचरण किया जाय और कोई देश दूसरे के मामलों में दखल न दे तो इन भिन्नताओं से शान्ति के मार्ग में कोई बाधा नहीं पड़ सकती और न कोई झगड़े पैदा हो सकते हैं। यदि प्रत्येक देश को यह भरोसा हो जाय कि उस पर कोई आक्रमण न करेगा और उसकी प्रभुता तथा राज्य की सीमाएँ सुरक्षित रहेंगी तो विभिन्न देशों के बीच में

मित्रता और सहयोग रह सकता है। इससे संसार में जो तनातनी है वह कम हो जायगी और शान्ति के लिए वातावरण बन सकेगा।

५—विशेषकर प्रधान मन्त्रियों को आशा है कि ये सिद्धांत हिन्द-चीन की समस्या को हल करने में लागू किये जायँगे। हिन्द-चीन में जो राजनीतिक समझौता हो उसका उद्देश्य ऐसे स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना होनी चाहिये जिनमें एकता और लोकतन्त्र हो और जिनका उपयोग किसी आक्रमणकारी उद्देश्य के लिए न हो और जिनमें कोई विदेशी शक्ति दखल न दे सके। इससे इन देशों में आत्म-विश्वास पैदा होगा और उनमें तथा उनके पड़ोसियों के बीच मित्रता कायम हो सकेगी। उपर्युक्त सिद्धान्तों को मानने से एक शान्ति का क्षेत्र स्थापित हो सकेगा जिसका परिस्थितियों के अनुसार विस्तार किया जा सकेगा और इस प्रकार युद्ध की सम्भावनाओं को घटाया जा सकेगा और सारे संसार में शांति के पक्ष को मजबूत किया जा सकेगा।

६—प्रधान मन्त्रियों ने चीन और भारत की मित्रता में अपना विश्वास प्रकट किया जिससे विश्व शान्ति में सहायता मिलेगी और इन दोनों देशों तथा एशिया के अन्य देशों के शांतिमय विकास में भी मदद मिलेगी।

७—इस बात चीत का उद्देश्य एशिया की समस्याओं को और अच्छी तरह समझना और दुनिया के अन्य देशों के साथ मिल कर इनको और इन प्रकार की अन्य समस्याओं को सुलझाना तथा इसके लिये शांति और सहयोग से मिल कर काम करना है।

८—दोनों प्रधान मन्त्री सहमत हैं कि उनके दोनों देशों में निकट संपर्क रहे ताकि दोनों में पूरा समझौता बना रहे। उन्हें आपस में मिलने का और खुलकर विचार-विनिमय करने का जो मौका मिला उसे वे बहुत मूल्यवान् समझते हैं जिससे वे एक-दूसरे को अच्छी तरह समझ सकें और शान्ति के प्रयत्न मिलकर कर सकें।

परिशिष्ट—४

TEXT OF S. E. A. T. O. TREATY

The following is the text of the treaty signed at the end of the eight-nation (America, Britain, France, New Zealand, Australia, Pakistan, Philippines, Thailand) conference SEATO held at Manila on Sept. 8, 1954.

"The parties to this treaty recognize the sovereign equality of all the parties, retain their faith in the purposes and principles set forth in the Charter of the U. N. and their desire to live in peace with all people and all Governments.

"Reaffirming that in accordance with the Charter of the U.N. they uphold *the principle of equality of rights and self-determination of peoples and* declaring that they will earnestly strive by every peaceful means to promote self-government and to secure the independence of all countries whose people desire and are able to undertake the responsiblities.

"Intending to declare publicly and formally their sense of unity so that any potentiol aggressor will appreciate that the parties stand together in the area and desiring further to co-ordinate their efforts for collective defence for the preservation of peace and security, therefore agree as follows:

PEACEFUL MEANS

"**Article 1:** The parties undertake as set forth in the Charter of the U.N. to settle any international dispute in which they may be involved by peaceful means in such a manner that international peace and security and justice are not endangered and to refrain in their international relations from the threat or use of force in any manner inconsistent with the purpose of the U.N.

"**Article 2:** In order more effectively to achieve the objectives of this treaty the parties, separately and jointly by means of continuous and effective self-help and mutual aid will maintain and develop individual and collective capacity to resist armed attack and to prevent and counter subversive acts from without against their territorial integrity and political stablity.

"**Article 3:** The parties undertake to strengthen their free institutions and to co-operate with one another in the future development measures including technical assistance designed both to promote economic progress and social well-being and to further the individual and collective efforts of Governments towards these ends.

COMMON ACTION

"**Article 4:** (a) Each party recognizes that aggression by means of armed attack in the treaty area against any of the parties or against any State or territory which the parties by unanimous agreement may hereafter designate would endanger its own peace and safety and agrees that it will in that event act to meet the common danger in accordance with its constitutional processes. Measures taken under this paragraph small be immediately reported to the Security Council of the U. N.

"(b) If in the opinion of any of the parties the inviolability or the integrity of the territory of the sovereignty or political independence of any party in the treaty area or of any other State or territory to which the provisions of paragraph one of this article from time to time apply is threatened in any way other than by armed attack or is affected or threatened by any fact or situation which might endanger the peace of the area, the parties shall consult immediately in order to agree on the measures which should be taken for the common defence.

"(c) It is understood that no action on the territory of any State designated by unanimous agreement under paragraph one of this article or on any territory so designated small be taken except at the invitation or with the consent of the Government concerned.

NEW COUNCIL

"**Article 5:** The parties hereby establish a council on which each of them shall be represented to consider matters concerning the implementation of this treaty. The council shall provide for consultation with regard to military and any other planning as the situation obtaining in the treaty area may from time to time require. The council shall be so organized as to be able to meet at any time.

"**Article 6:** This treaty does not affect and shall not be interpreted as affecting in any way the rights and obligations of any of the parties under the Charter of the U.N. or the responsibility of the U.N. for the maintenance of international peace and security. Each party declares that none of the international engagements now in force between it and any other of the parties or any third party is in conflict with the provisions of this treaty and undertakes not to enter into any international engagement in conflict with this treaty.

"**Article 7:** Any other State in a position to further the objectives of this treaty and contribute to the security of the area may by unanimous agreement of the parties be invited to accede to this treaty. Any State so invited may become a party to the treaty by depositing its Instrument of Accession with the Government of the Republic of the Philippines. The Government of the Republic of the Philippines shall infrom each of the parties of the deposit of each such Instrument of Accession.

TREATY AREA

"**Article 8:** As used in this treaty, the treaty area is the general area of South-East Asia including also the entire territories of the Asian parties and the general area of the South-East Pacific not including the Pacific area-north of 21 degrees 30 minutes north latitude. The parties may by unanimous agreement amend this article to include the territory of any State acceding to this treaty in accordance with Article Seven or otherwise to change the treaty area.

"**Article 9 (a):** This treaty shall be deposited in the archives of the Government of the Republic of the Philippines. Duly certified copies thereof shall be transmitted by that Government to the other signatories.

(b) The treaty shall be ratified and its provisions carried out by the parties in accordance with their respective constitutional processes. The instruments of ratification shall be deposited as soon as possible with the Government of the Republic of the Philippines which shall notify all the other signatories of such deposit.

(c) The treaty shall enter into force between the States which have ratified it as soon as the instrument of ratification of a majority of signatories shall have been deposited and shall come into effect with respect to each other State on the date of the deposit of its instruments of ratification.

"**Article 10:** This treaty shall remain in force indefinitely but any party may cease to be a party one year after its notice of denunciation has been given to the Government of the Republic of the Philippines which shall inform the Government of the other parties of the deposit of each notice of denunciation.

"**Article 11:** The English text of this treaty is binding on the parties but when the parties have agreed to the French text thereof and have so notified the Government of the Republic of the Philippines the French text shall be equally authentic and binding on the parties."

U. S. DECLARATION

To the treaty text was added the following understanding of the U.S.A.:

This reads: "The delegation of the U.S.A. in signing the present treaty does so with the understanding that its recognition of the effect of aggression and armed attack and its agreement with reference thereto in Article Four, Paragraph One, applies only to Communist aggression, but affirms that in the event of other aggression or armed attack, it will consult under the provisions of Article Four."

A protocol to the treaty states:—

"Designations of States and territory as to which provisions of Article Four and Article Three are to be applicable.

The parties to the South-East Asia collective defence treaty unanimously designate for the purposes of Article Four of the treaty the States of Cambodia and Laos and the free territory under the jurisdiction of the State of Viet-Nam.

"The parties further agree that the above mentioned States and territory shall be eligible in respect of the economic measures contemplated by Article Three.

"This protocol shall come into fore simultaneously with the coming into force of the treaty."

PACIFIC CHARTER TEXE

The eight nations represented at the South-East Asian defence talks to-day issued a declaration of principles involved calling it the Pacific Charter. The following is the text of the Charter.

"The delegates, desiring to establish a firm basis for common action to maintain peace and security in South-East Asia and the South-West Pacific:

"Convinced that common action to this end, in order to be worthy and effctive, must be inspired by the highest principles of justice and liberty do hereby proclaim.

"(1) In accordance with the provisions of the U. N. Charter they uphold the principle of equal rights and self-determination of peoples and they will earnestly strive by every peaceful means to promote self-government and to secure the independence of all countries whose peoples desire it and are able to undertake its responsibilities.

"(2) The are each prepared to continue taking effective practical measures to ensure conditions favourable to the orderly achievement of the foregoing purposes in accordance with their constitutional procedures.

"(3) They will continue to co-oprate in the economic, social and cultural fields in order to promote higher living standards, economic progress and social well-being in this region.

"(4) As decreed in the South-East Asian collective defence treaty they are determined to prevent or counter by app'opriate means any attempt in the treaty area to subvert freedom or to destroy their sovereignty or territorial integrity."

[अंग्रेजी दैनिक 'स्टेट्समैन' दिल्ली संस्करण के १० सितम्बर १९५४ के अंक से उद्धरित।]